ॐ

श्रीवीतरागाय नमः

जैनहितैषीके चौथे वर्षका उपहार।

काशीवासी कविवर बाबू वृंदावनजी रचित

वृन्दावनविलास।

जिसे

देवरी (सागर) निवासी श्रीनाथूराम प्रेमीने

सम्पादन किया

और

बम्बईस्थ–श्रीजैनहितैषीकार्यालयने–

निर्णयसागरप्रेसमें मुद्रितकराके

प्रकाशित किया।

श्रीवीरनिर्वाण सवत् २४३४।

नं. १.

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः ।

कविवर बाबू वृन्दावनजीका

जीवनचरित्र ।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥ १ ॥
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थितं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥ २ ॥

(कस्यचित्कवे.)

"वे पुण्यात्मा रससिद्ध कवीश्वर जयवन्त हैं, जिनके यशरूपी शरीरको कभी जरामरणरूप भय नहीं घेरता ॥ १ ॥"

"वे महात्मा पुरुष धन्य है, और उन्हींका यश ससारमें स्थिर है, जिन्होंने काव्योंकी रचना की है । अथवा जिनकी काव्योंमें कीर्ति गाई गई है ॥ २ ॥"

काशीवासी कविवर बाबू वृन्दावनजीका पौद्गलिक शरीर आज ससारमें नहीं है। उसका अग्निसस्कार हुए न्यूनाधिक ५० वर्ष वीत गये । परन्तु उनका यश-शरीर ज्यों का त्यों किंवहुना उससे भी अधिक प्रभावशालीरूपमें विराजमान है। और जवतक हिन्दीभाषा तथा उसके जाननेवाले हैं, तवतक अजर अमर रहेगा । जो चिरस्थायी यश कवियोंको उनकी प्रतिभाप्रसूत कवितासे प्राप्त होता है, वह यश राजाओंको महाराजाओंको तथा कुवेरसदृश धनियोंको अपना सर्वस्व लुटा देनेपर भी नहीं मिल सक्ता है। कविवर वृन्दावनजीने चार पाच ग्रन्थोंकी रचना करके जैसी कीर्ति सम्पादन की है, क्या कविताके सिवाय और कोई द्वार ऐसा है, जिससे वैसी कीर्ति प्राप्त हो सके? हम तो कहेंगे कि नहीं । महात्मा वृन्दावनजीको धन्य है, जिनका यश उनके उत्तमोत्तम काव्योंकी रचनाके कारण आज प्रत्येक जैनीकी जिह्वापर नृत्य कर रहा है।

कविवर वृन्दावनजीकी कविता कैसी है, उसका वर्णन शब्दोसे नही किया जा सकता है। जो लोग कविताके मर्मको जाननेवाले हैं, उन्हें स्वय पाठ करके देखना चाहिये। क्योकि—

"निवेद्यमानं शतशोऽपि जानते स्फुटं रसं नानुभवन्ति तं जनाः"

कविता बाह्य शाब्दादि विचारसे प्राय' सब कवियोकी एक सी होती है। परन्तु जो लोग मर्मज्ञ हैं, उन्हें उसमें उत्कृष्टता तथा निकृष्टता दिखलाई देती है। किसी कविने कैसा अच्छा कहा है कि,—

अपूर्वो भाति भारत्याः काव्यामृतफले रसः।
चर्वणे सर्वसामान्ये स्वादुवित्केवलं कविः॥

अर्थात् " सरस्वतीके काव्यामृतरूपी फलमें एक अपूर्व ही रस है, जो चर्वण करनेमें तो सबको एकसा जान पड़ता है, परन्तु उसका स्वाद केवल कवि (मर्मज्ञ)ही जानते हैं।"

वृन्दावनजी स्वाभाविक कवि थे। उन्हें जो कवित्वशक्ति प्राप्त थी, उनमें जो कविप्रतिभा थी, उसका उपार्जन पुस्तकोंके अथवा किसी गुरुके द्वारा नही हुआ था किन्तु वह पूर्वजन्मके सस्कारसे प्राप्त हुई थी। उनकी कवितामें स्वाभाविकता और सरलता बहुत है। बनावटी अस्वाभाविक कविता करनेमें जान पड़ता है, उनकी बुद्धि कभी अग्रसर नही हुई। शृगाररसकी कविता करनेकी ओर भी उनकी कभी प्रवृत्ति नही हुई। जिस रसके पान करनेसे जरामरणरूप दु ख अधिक नही सताते है और जिससे ससार प्राय. विमुख हो रहा है, उस अध्यात्म तथा भक्तिरसका मथन करनेमें ही कविवरकी लेखनी डूबी रही है। गृहस्थावस्थामें रहकर भी केवल शान्तिरसकी ओर प्रवृत्ति देखकर दूसरे लोगोंको आश्चर्य होगा। परन्तु जैनियोंके लिये यह एक अति सामान्य विषय है। क्योंकि जैनधर्मकी सम्पूर्ण शिक्षाओंका झुकाव प्राय. इसी ओरको रहता है। शान्तिरसको प्रशसामें श्रीमुनिसुन्दरसूरिने कहा है कि—

"सर्वमङ्गलनिधौ हृदि यस्मिन् सङ्गते निरुपमं सुखमेति।
मुक्तिशर्म च वशीभवति द्राक् तं बुधा भजत शान्तरसेन्द्रम्॥"

अर्थात् " जिसके हृदयमें प्राप्त होनेसे अनुपम सुखकी प्राप्ति

होती है और शीघ्र ही मुक्तिलक्ष्मी वशमें हो जाती है, बुद्धिवान् पुरुष सम्पूर्ण मंगलोंके समुद्रस्वरूप उस शान्त रसेन्द्रका अनुभवन सेवन करते हैं।”

कविवर वृन्दावनजीकी कविताकी आलोचना करनेके पहिले हम उनकी जीवनचरित्रसम्बधी दो चार बातें जो यहां वहांसे एकत्र की गई हैं, प्रगट कर देना उचित समझते हैं। खेद है कि, अवकाशके अभावसे और काशी, आरा आदि स्थानोंमें स्वयं जाकर शोध करनेका अवसर न पानेसे हम कविवरके विषयमें अधिक परिचय देनेको समर्थ नहीं हो सके, तौ भी—

“पीयूषं न हि निःशेषं पिबन्नेव सुखायते”

की उक्तिके अनुसार हमको आशा है कि, यह थोड़ा भी परिचय पाठकोंको संतोषप्रद हुए विना न रहेगा।

सुनामधेय कविवर बाबू वृन्दावनजीका जन्म शाहाबाद जिलेके बारा नामक ग्राममें विक्रम संवत् १८४८ में हुआ था। आप जगत्प्रसिद्ध अग्रवाल वंशके गोयल गोत्रमें उत्पन्न हुए थे। आपके पूर्वपुरुष उक्त ग्राममें ही रहते थे। बारामें एक बाग अब तक मौजूद है, जिसे लालूबाबाका बाग कहते हैं। लालूबाबा अथवा लालजी कविवरके पितामहका नाम था।

बाराका निवास छोड़कर कविवरके वंशधर काशीमें आकर रहने लगे थे। संवत् १८६० में कविवर भी जब कि उनकी उमर केवल १२ वर्षकी थी, काशीमें आ गये थे। जैसा कि इस पद्यसे प्रगट होता है:—

बानारसी आरा ताके बीच बसै बारा, सुरसरिके[1] किनारा तहां जनम हमारा है। ठारै अडताल माघ सेत चौदैं सोम पुष्य, कन्या लग्न भानु अंशसत्ताईस धारा है[2] ॥ साठमाहि काशी आये तहां सतसंग पाये, जैनधर्ममर्म लहि भर्म सब डारा है। सैली सुखदाई भाई काशीनाथ आदि जहां, अध्यातमबानीकी अखंड वहै धारा है॥

कविवरके वंशका वर्णन प्रवचनसारकी प्रशस्तिमें बहुत विस्तारसे दिया है, इसलिये हम उसे यहां उद्धृत करते हैं।

मार्गशीर्ष गत दोय, और पन्द्रह अनुमानो।
नारायन विच चंद्र जानि, औ सतरह जानो॥

---

१ गंगाजीके किनारे। २ संवत् १८४८ माघ शुक्ला १४ सोमवार, पुष्यनक्षत्र, कन्या लग्न, भानु अंश २७ के शुभ मुहूर्तमें कविवरका जन्म हुआ था।

इसी बीच हरिवंशलाल, बाबा गृह जाये।
नाम सहारूसाह, साहजूके कहलाये॥
बाबा हीरानंदसाह, सुन्दर सुत तिनके।
पंच पुत्र धनधर्मवान, गुनजुत थे इनके॥
प्रथमै राजाराम बबा, फिर अभयराज सुतु।
उदयराज उत्तम सुभाव, आनन्दमूर्ति गुतु॥
भोगराज चौथे कह्यो, जोगराज पुनि जानिये।
इन पितु लगि काशी, निवास अस मानिये॥
अब बाबा खुशहालचन्द, सुतका सुन वरनन।
सीताराम सुज्ञानवान, वंदों तिन चरनन॥
ददा हमारे लालजी, वो कुल औगुन खंडित।
तिन सुत धर्मचन्द मो पितु सब, शुभ जसमंडित॥
तिनको दास कहाय, नाम मो वृन्दावन है।
एक भ्रात औ दोय पुत्र, मोकों यह जन है॥
महावीर है भ्रात नाम, सो छोटो जानो।
ज्येष्ठ पुत्रको नाम, अजित इमि करि परमानो॥
मो लघु सुत है शिखरचन्द, सुंदर सुत ज्येष्ठको।
इमि परिपाटी जानिये, कह्यो नाम लघु श्रेष्ठको॥
मंगसिर सित तिथि तेरस, काशीमें तब जानो।
विक्रमाब्दगत सतरह सै, नवविदित सुमानो॥

इस प्रशस्तिसे ऐसा जान पड़ता है कि, पहले इनके वंशधर काशीमें ही रहते थे। पीछेसे बारा चले गये थे, और बारासे फिर काशीमें रहने लगे थे। हरिवंशलाल और खुशहालचन्दमेंसे हरिवंशलालका कुटुम्ब तो जोगराजजीकी पीढ़ीतक काशीमें ही रहा है। परन्तु खुशालचन्दका कुटुम्ब शायद स्थानान्तर कर गया था। और संवत् १७०९ में फिर काशी आ रहा था। कविवरके पिता बाबू धर्मचन्द्रजी काशीमें बाबरशहीदकी गलीमें रहते थे।

हर्षका विषय है कि, कविवरका वंश आरामें अब तक विद्यमान है।

वंशवृक्ष ।

हरिवंशलाल
सहाळसाह
हीरानन्दसाह
राजाराम
अभयराज
उदयराज
भोजराज
जोगराज
खुशालचन्द
सीताराम
लालजी
धर्मचन्द
कविवृन्दावन
महावीरप्रसाद
अजितदास
शिखरचन्द
सुन्दरदास
पुरुषोत्तमदास
शिरोमणि
हरिदास
हनुमानदास
गुलाबदास
महताब
बुलाकचन्द.
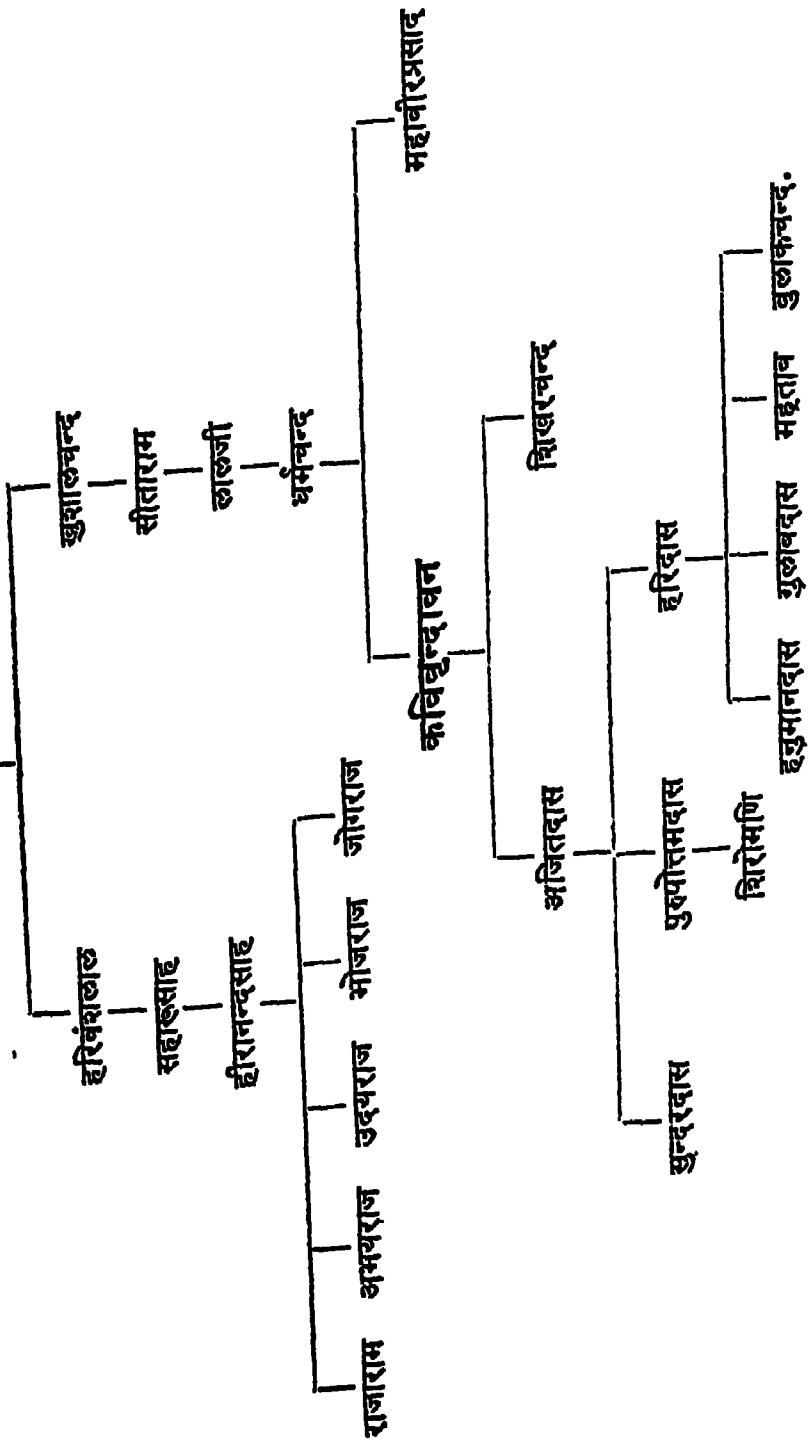
यद्यपि उसकी आर्थिक अवस्था पूर्वकी नाई नही है, परन्तु साधारण लोगोसे कहीं अच्छी है।

कविवरके ज्येष्ठ पुत्र वावू अजितदासजीका विवाह आरामें बाबू मुन्नीलालजीकी सुपुत्रीसे हुआ था। मुन्नीलालजी आरामें एक प्रतिष्ठित धनी थे। वावू अजितदास प्रायः अपनी ससुरालमें आया जाया करते थे और पीछे वही रहने लगे थे। उसी समयसे उनका कुटुम्व आरानिवासी हो गया। आरामें रहते हुए उसे लगभग ६० वर्ष हो गये।

कविवरके दो पुत्रोंमेंसे केवल अजितदासजीसे वशकी रक्षा हुई। शिखरचन्दजीके कोई सन्तान नही हुई। अजितदासजीके सुन्दरदास, पुरुषोत्तमदास, और हरिदासनामके तीन पुत्र हुए थे। इन तीनोंका जन्म आरामें ही हुआ था, जिनमेंसे सुन्दरदासके कोई सतान नहीं हुई। पुरुषोत्तमदासके शिरोमणिवीवी नामकी एक पुत्री है, जो कि अभी जीवित हैं, और वावू हरिदासजीके हनुमानदास, गुलावदास, महतावदास, और वुलाकचन्दनामके चार पुत्र है। श्रीजीसे प्रार्थना है कि, उनका वश चिरकालतक ससारमें रहै, और उसमें अनेक प्रतिभाशाली कविरत्न उत्पन्न हों।

वावू अजितदासजी भी अपने पिताके समान कवि थे। कविवर वृन्दावनजीने छन्दशतक नामका जो पिंगलका ग्रन्थ वनाया है, वह इन्हीके पढनेके लिये वनाया था। जैसा कि, उसकी प्रशस्तिमें लिखा है;—

अजितदास निज सुअनके, पढनहेत अभिनन्द।
श्रीजिनन्द सुखकन्दको, रच्यो छंद यह वृन्द॥

कविवरकी इच्छा थी कि गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायणके सदृश एक जैनरामायण वनाई जावे, तो ससारका वहुत उपकार हो। परन्तु उनकी यह इच्छा पूर्ण न हुई। निदान मृत्युके समय उन्होंने अपने पुत्रसे कहा कि, जैनरामायणको वनाके तुम मेरी एक इच्छाकी पूर्ति करना। हर्षका स्थान है कि, अपने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके वावू अजितदासजीने जैनरामायण वनाना प्रारभ कर दी और उसके ७१ नगोंरी

रचना भी कर डाली । परन्तु खेद है कि, असमयमें ही निर्दयी कालने उन्हें इस संसारसे उठा लिया ।

आरामें बाबू हरिदासजीके पास उक्त रामायण सरक्षित है, और सुना है कि, बाबू हरिदासजी स्वय उसे पूर्ण करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हें हिन्दीकी साधारण कविता करनेका अभ्यास है ।

कविवरके पिता बाबू धर्मचन्द्रजी काशीमें बावरशहीदकी गलीमें रहते थे। आप बडे भारी धर्मात्मा और गण्यमान्य पुरुष थे । आपकी शारीरिक सम्पत्ति ऐसी अच्छी थी कि, उस समय काशीमें शायद ही कोई उनके समान बलवान हो। कहते हैं, आपको क्षेत्रपाल और पद्मावती देवीका इष्ट था। एकवार गोपालमन्दिरके अध्यक्ष जैनियोंके पचायती मन्दिरका मार्ग वन्द करनेपर उतारू हो गये। एक दिन उन सबने रातभरमें मन्दिरके मार्गपर दीवार खडी कर दी। दूसरे दिन जब बाबू धर्मचन्द्रजी अपने द्वारपर बैठे हुए दातौन कर रहे थे, तब बहुतसे जैनियोंने आकर कहा. "बाबू साहब! आपके रहते हुए पचायती मन्दिरकी राह वन्द कर दी गई!" इसके सुनते ही धर्मचन्द्रजीका धार्मिक जोश भभक उठा। वे उसी समय दातौन फेंककर उठ खडे हुए । जाकर देखा, तो डेढ़ पुरुष ऊंची दीवार खड़ी हो गई है। क्रोधमें अपने आपेको भूलकर धर्मचन्द्रजी छलांग मारके दीवारपर चढ गये। और उसे लात घूसोंसे ही उन्होंने चकनाचूर कर डाली। ब्राह्मणोने बडा हल्ला मचाया । सबके सब लाठिया लेकर धर्मचन्द्रजीपर टूट पडे। परन्तु जब धर्मचन्द्रजी उनके सम्मुख लाठी लेकर और यह कहकर कि, "देखें, आज किसकी माने भैसा जना है" खड़े हो गये, तब किसीका भी साहस न हुआ। इनके पराक्रमको देखकर कोई एक हाथ भी न उठा सका । सबके सब अपनासा मुह लेकर कलेक्टरकी कोठीपर पहुचे । इधर धर्मचन्द्रजी भी घर आ कपडे बदलकर साहब बहादुरसे जाके मिले और वारदातका सारा हाल वयान करके न्यायकी प्रार्थना करने लगे । साहब कलेक्टरने उसी समय आज्ञा देकर जो इस मामलेमें शामिल थे, ऐसे दो हजार आदमियोंको गिरफ्तार कराया और मुकद्दमा चलाया । अन्तमें बहुतसे आ-

दमियोंको जैलकी सजा मिली और वहुतसे मुचलका लेकर छोड़ दिये गये । इन्हीं धर्मवीर धर्मचन्द्रजीके यहा कविवर वृन्दावनजीने जन्म लिया था ।

कविवरकी माताका नाम सितावो और स्त्रीका रुक्मणि था जैसा कि, छन्दशतककी प्रशस्तिसे विदित होता है । रुक्मणि वडी धर्मपरायणा और पतिव्रता स्त्री थी । कहते हैं कि, उसे लिखना पढ़ना भी अच्छीतरहसे आता था । कविवरका अपनी पतिप्राणा भार्यासे अतिशय प्रेम था । ग्रन्थप्रशस्तिमे उसका नाम प्रगट करना ही उनके प्रेमका एक यथेष्ट प्रमाण है । छन्दशतकका मञ्जुभाषिणी छन्दका उदाहरण, जान पड़ता है कि, उन्होंने अपनी गुणवती भार्याका आदर्श सम्मुख रखकर ही वनाया था,—

प्रमदा प्रवीन व्रतलीन पावनी ।
दिढशीलपालि कुलरीति राखिनी ।
जल अन्न शोधि मुनिदानदायिनी ।
वह धन्य नारि मृदुमंजुभाषिनी ॥

खेद है कि, वर्तमानमें ऐसी स्त्रिया दुर्लभ हो गई हैं ।

रुक्मणिके पिताका घर अर्थात् वृन्दावनजीकी ससुराल काशीके ठठेरी वाजारमें थी । उनके श्वसुर एक बड़े भारी धनिक थे । उनके यहा उस समय टकसालका काम होता था । हमारे वहुतसे पाठक इस वातको जानते होंगे कि, पहले सरकारी टकसालें नही थी । महाजनोंकी टकसालोंमें ही सिक्का तयार होता था । आजकलके समान उस समयकी गवर्नमेंट सोलह आनेमें १० आनेका सिक्का देकर प्रजाकी प्रवंचना नहीं करती थी । अस्तु, एक दिन एक किरानी अंग्रेज कविवरकी ससुरालमें आया । उस समय वे वहीपर उपस्थित थे । उसने इनके श्वसुरसे कहा कि, "हम तुम्हारा कारखाना देखना चाहता है कि, उसमें कैसे सिक्के तयार होते हैं" वृन्दावनजीने वतानेसे इनकार कर दिया, और अधिक वातचीत करनेपर उससे कह दिया, कि "जाओ तुम्हारे सरीखे वहुत किरानी देखे हैं।" पाठकोंको जानना चाहिये कि, प्रजाके हृदयमें उस समय अंग्रेजोंका इतना आतक नही था, जैसा कि आजकल है । उस समयके अंग्रेज प्रजासे हि-

लमिल कर रहनेकी कोशिश करते थे। परन्तु आजकल उनका मस्तक आसमानसे छू गया है। अब वे सर्व साधारणसे मिलनेमें घृणा प्रकाश करते हैं। प्रजा भी अब उन्हें एक हौआ समझती है।

दैवयोगसे कुछ दिन पीछे वही किरानी काशीका कलेक्टर होकर आया। उस समय हमारे कविवर सरकारी खजाची थे। साहब बहादुरने पहली मुलाकातहीमे इन्हें पहचान लिया और जीमें बदला चुकानेकी ठान ली। वृन्दावनजी बहुत होशयारी और दयानतदारीसे काम करते थे। परन्तु जब अफसर ही दुश्मन बन गया था, तो कहा तक जान बचती। आखिर एक जाल बनाकर साहबने इन्हे तीन वर्षकी जैल दे दी। और इन्हें शान्तिपूर्वक उस अत्याचारको सहना पडा। उन दिनो जिलाका मजिष्ट्रेट ही जिलाका राजा समझा जाता था और मनमानी नव्वाबी कर सकता था। फिर इनका न्याय अन्याय कौन पूछता था।

कुछ दिनके पश्चात् एक दिन सबेरे ही साहब कलेक्टर जैल देखने गये। उस समय हमारे कविवर जैलकी कोठरीमे पद्मासन बैठे हुए,—

"हे दीनबन्धु श्रीपति करुनानिधानजी।
अब मेरी व्यथा क्यों न हरो बार क्या लगी॥"

इस स्तुतिको बनाते जाते थे और भैरवीमें गाते थे। उनमें यह एक अपूर्व शक्ति थी कि, जिनेन्द्रदेवके ध्यानमें मग्न होकर वे धाराप्रवाह कविता कर सकते थे। उन्होने दो लेखक इसी लिये नौकर रख छोडे थे कि—जो कविता वे बनावें, उन्हें लिख लेवें। परन्तु जैलकी कोठरीमें कौन था जो लिख लेता? भगवानकी स्तुति करते समय वे सिवाय भगवानके और किसीको नहीं देखते थे। गाते समय उनकी आखोंसे आसू बह रहे थे। साहब बहुत देर उनकी यह दशा देखते रहे और कोठरीके पास खडे रहे। उन्होंने "खजाची बाबू! खजाची बाबू!" कहकर कई बार पुकारा, परन्तु कविवरकी समाधि नहीं टूटी। निदान साहब बहादुर अपने आफिसको लौट गये। थोडी देरमे एक सिपाहीके द्वारा बुलवाकर उन्होने पूछा, "तुम क्या गाटा था, और रोटा था।' कविवरने उत्तर दिया, "अपने भगवानसे तुम्हारे जुल्मकी फरियाद करता

था।" तव साहवने कहा, "तुम क्या कहटा था, हम सुनना चाहटा है।" इसपर कविवरने सारी विनती साहवको पढ़कर सुनाई और उसका अर्थ भी समझाया, जिससे पाषाणहृदय अंग्रेजका हृदय भी पिघल गया। उसने उसी समय तीन वर्षकी जैलको एक महीनाकी कर दी। और कहा, एक मास पूर्ण हो जाने दो, दो चार दिन बाकी हैं। इस बीचमें आप दिनभर चाहे जहा रहें, परन्तु रातको जैलमें आकर सो रहा करें। कविवरकी इसी घटनासे "हे दीनबंधु श्रीपति" की विनतीका माहात्म्य इतना बढ़ गया कि, आज वह सारे जैनसमाजमें घर घर गाई जाती है और संकटमोचनस्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध हो गई है।

जैल जानेकी घटनाके कविवरकी कवितामें बहुतसे प्रमाण मिलते हैं, जिनमेंसे हम थोड़ेसे यहा उद्धृत करते हैं:—

"अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है।
इन्साफ करो मत देर करो, सुखवृन्द भरो भगवाना है॥" (पृष्ठ २)

"वृषचन्द्नन्दवृन्दको, उपसर्ग निवारो।" (पृष्ठ २०)

"इस वक्तमें जिनभक्तको, दुख व्यक्त सतावै।
ऐ मात तुझे देखके, करुणा नहीं आवै॥" (पृष्ठ २४)

"बे जानमें गुनाह मुझसे वन गया सही,—
ककरीके चोरको कटार, मारिये नहीं॥" (पृष्ठ १५)

"अब मो दुख देखि द्रवौ करुणानिधि,—
राखहु लाज गहौ मम हाथा॥" (पृष्ठ २९)

"क्यों न हरौ हमरी यह आपति" (पृष्ठ ३०)

इन सव कविताओंसे प्रत्येक पुरुष अनुमान कर सकता है कि, अवश्य ही किसी सकटके समयमें उन्होंने ये उद्गार निकाले है। निम्नलिखित पद्योंसे तो विलकुल ही स्पष्ट हो जाता है कि, वे जेलकी विपत्तिमें पड़े थे;—

"श्रीपति मोहि जान जन अपनो,
हरो विघन दुख दारिद जेल।"

"हमें[1] आपका है बड़ा आसरा । सुनो दीनके बंधु दाता वरा ।
नृपागारगर्तातैं काढ़िये । अभैदान आनंदको बाढिये ॥"

ऐसा जान पड़ता है कि, इस ग्रन्थमे जितने स्तोत्र हैं, वे प्रायः सब कारागृहमें बनाये गये है । सबमें उनके हृदयके अपार दुःखकी झलक दिखलाई देती है, जिससे पाषाणहृदयमें भी करुणाका प्रादुर्भाव होता है ।

काशीके राजघाटपर फुटही कोठीमे एक गार्डन साहब सौदागर रहते थे । उनकी एक बड़ी भारी दूकान थी । सुनते हैं, कुछ दिनो आप उनकी दूकानका काम करते रहे हैं । एक प्रकारसे आप उनके मैनेजर ही थे । कारखानेमें भी कागज पेंसिल आपके साथ रहती थी । आप कामकी देखभाल करते जाते थे और कविता भी रचते जाते थे । कविता करनेकी शक्ति उनमें ऐसी अद्भुत थी कि, देखने सुननेवाले आश्चर्य करते थे। बात करते २ वे सुन्दर कविता करके लोगोंका मन हरण कर लेते थे ।

कहते हैं, आप जब जिनमन्दिरमें दर्शन करने जाया करते थे, तब नित्य नवीन स्तोत्र बनाकर दर्शन करते थे । लेखक उनके निरन्तर साथ रहता था, जो उस कविताको तत्काल ही लिख लेता था । सुनते है, देवीदासजी जिनके थोड़ेसे पद इस ग्रन्थमें संग्रह किये गये हैं, उनके यहा इसी कार्यपर नियत थे । देवीदासजीसे आपका विशेष सौहार्द था । अनेक पदोंमें वृन्द और देवीका एकत्र नाम देखकर इस बातमे कोई सन्देह नहीं रहता । कोई २ कहते हैं कि, हमारे कविवर ही अपना नाम कभी २ देवीदास लिखते थे, क्योंकि उन्हें पद्मावती देवीका इष्ट था। परन्तु

---

१ यह पद्य श्रीललितकीर्ति भट्टारककी चिट्ठीमें लिखा है । इससे सन्देह होता है कि, यह पत्र क्या उन्होंने कैदखानेमेंसे लिखा था ? पत्रके आरंभमें जो विषय लिखा है, उससे इस पद्यका तथा इसके ऊपरके सारवती छन्दका सम्बन्ध नहीं मिलता है । कहीं ऐसा न हो कि, किसी स्तोत्रमेंके ये पद्य हों और चिट्ठी नकल करनेवाले महाशयने भूलसे चिट्ठीमें शामिल कर लिये हों । इन पद्योंके "दीनके बंधुके दातावरा" आदि सम्बोधन भी जिनदेवके जान पड़ते हैं । जो हो, यदि निश्चय ही जेलखानेमें यह पत्र लिखा गया है, तो इस बातका पता लग जाता है कि, संवत् १८९१ में कविवरको 'नृपागारगर्तमें' पड़ना पड़ा था ।

यह केवल एक भ्रम है। क्योंकि यदि ऐसा होता, तो कहीं २ एकही पदमें देवी और वृन्द दो नाम नहीं लिखे जाते।

देवीदास नामके अनेक कवि हुए हैं। परन्तु अनुसंधान करनेसे विदित हुआ कि, वृन्दावनजीके समयमें उनमें कोई भी नहीं हुए हैं। हमारे कविवरके साथी देवीदासजी भी कवि थे, परन्तु अभीतक उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नही हुआ। काशीके शास्त्रभंडारमें जहासे कि हमने यह ग्रन्थ संग्रह किया है, कविवर देवीदासजीकृत प्रवचनसार ग्रन्थ मिला था, जिससे हमने समझा था कि, ये ही कविवर वृन्दावनके साथी देवीदासजी होंगे। परन्तु उसकी प्रशस्ति देखनेसे यह अनुमान ठीक नहीं निकला। प्रवचनसारके कर्ता देवीदास ओरछा राज्यके अन्तर्गत दुगोडा ग्रामके रहनेवाले गोलालारे खरौवा जैनी थे। उन्होंने संवत् १८२४ में उक्त ग्रन्थ बनाया था। परमानन्दविलास नामका ग्रन्थ भी शायद उन्हीं देवीदासका बनाया हुआ है।

आराके वृद्ध पुरुषोंके द्वारा विदित हुआ है कि, वृन्दावनजीका शरीर खर्व था। अर्थात् न लम्बे न नाटे साधारण कदके पुरुष थे। रंग गेंहुआ था। धोती मिरजई और पगड़ी यही आपकी साधारण देशी पोशाक थी। कभी २ आप टोपी भी लगाते थे। मृत्युके ५–७ वर्ष पहलेसे वे उदासीन वृत्तिमें रहने लगे थे। इस लिये केवल एक कोपीन और चादर ये दो ही वस्त्र रखने लगे थे। जूता पहिनना भी छोड़ दिया था।

कविवरको कहते हैं, युवावस्थामें केवल एक भंग पीनेका व्यसन था। उसके गुलाबी नशेमें आप धाराप्रवाह कविता किया करते थे। आपकी गुप्तदान करनेके विषयमें बडी भारी ख्याति थी। अनाथ दीन दुखियोंके आप परमबन्धु थे।

आपका स्वभाव बहुत शान्त था। आरामें एक शीतलगिरि नामके सन्यासी एकबार आये थे। आप उनसे मिलने गये, तो मैले पैरो ही उनके बिछौनेपर चले गये। इससे साधुमहाराजका मिजाज गरम हो गया। तब कविवरने कहा कि, "वाह! नाम शीतलगिरि और काम ज्वालामुखीका!" यह सुनकर सन्यासीजी लज्जित हो गये।

आरामें आप प्रायः आया जाया करते थे । वहाके बाबू परमेष्ठीदास-जीसे आपका विशेष धर्मस्नेह था । उन्हें कवितासे अतिशय प्रेम था । अध्यात्मशास्त्रोंके ज्ञाता भी आप खूब थे । इनके विषयमें कविवरने प्रवचनसारमें लिखा है,—

संवत चौरानूमें सुआय । आरेतें परमेष्ठीसहाय ॥
अध्यातमरंग पगे प्रवीन । कवितामें मन निशिदिवस लीन ॥
सज्जनता गुन गरुवे गंभीर । कुल अग्रवाल सुविशाल धीर ॥
ते मम उपगारी प्रथम पर्म । सांचे सरधानी विगत भर्म ॥

आराके बाबू सीमधरदासजीसे भी आपकी धर्मचर्चा हुआ करती थी ।

सवत् १८६० में जब कविवर काशीमें आये थे, उस समय वहा जैनधर्मके ज्ञाताओंकी अच्छी शैली थी । आढ़तरामजी, सुखलालजी सेठी, बकसूलालजी, काशीनाथजी, नन्हूंजी, अनन्तरामजी, मूलचन्दजी, गोकुलचन्दजी, उदयराजजी, गुलाबचन्दजी, भैरवप्रसादजी अग्रवाल, आदि अनेक सज्जन धर्मात्माओंके नाम कविवरने अपने ग्रन्थोंकी प्रशस्तिमें दिये हैं । इन सबकी सतसगतिसे ही कविवरको जैनधर्मसे प्रीति उत्पन्न हुई थी और इन्हींकी प्रेरणासे ग्रन्थोके रचनेका उन्होंने प्रारभ किया था । बाबू सुखलालजीको तीस चौबीसीपाठकी प्रशस्तिमें कविवरने अपना गुरु बतलाया है;—

"काशीजीमें काशीनाथ मूलचन्द नंतराम,
नन्हूंजी गुलाबचन्द प्रेरक प्रमानियो ।
तहां धर्मचन्दनन्द शिष्य सुखलालजीको,
वृन्दावन अग्रवाल गोलगोती बानियो ॥"

बाबू उदयराजजी लमेचूसे कविवरकी अतिशय प्रीति थी । अपने ग्रन्थोंमें उन्होंने उनका बड़े आदरसे स्मरण किया है.—

"सीताराम पुनीत तात, जसु मातु हुलासो ।
ज्ञाति लमेचू जैनधर्मकुल, विदित प्रकासो ॥
तसु कुल-कमल-दिनिंद, भ्रात मम उदयराज वर ।
अध्यातमरस छके, भक्त जिनवरके दिढ़तर ॥"

उदयराजजी काशीके एक प्रसिद्ध धनिक थे। काशीमें "खड्गसिंह उदयराजजी"के नामसे अबतक उनकी दूकान चलती है। परन्तु खेद है कि, उनके वंशमें अब कोई नहीं हैं। उनके बड़े बेटे बाबू राजाजी और छोटे बेटे बाबू लक्ष्मीचन्द्रजीकी दो विधवा स्त्रियां हैं। कुछ दिन हुए उन्होंने एक बालक गोद लिया है। परन्तु सुनते हैं कि, उनके नातीकी तरफसे उनके दामादने स्वयं वारिस बननेके लिये मुकद्दमा दायर किया है। यह खेदकी बात है। काशीजीके भेलूपुरे मुहल्लेमे उदयराजजीका बनवाया हुआ एक बड़ा मन्दिर तथा उनके घरपर बना हुआ एक सुंदर चैत्यालय उनके धर्मप्रेमको आजतक प्रगट कर रहे हैं।

कविवरके छोटे भाई बाबू महावीरप्रसादजीको भी जिनशासनके साथ अटूट प्रेम था। भेलूपुरेके मन्दिरोंके विषयमें आप कई मुकद्दमे लड़े थे। यह उन्हींके परिश्रमका फल है कि, श्वेताम्बरियोंके मन्दिरमें दिगम्बरी मूर्ति स्थापित है, किन्तु दिगम्बरी मन्दिरमे एक भी श्वेताम्बरी मूर्ति नही है।

कविवरको मन्त्रविद्यापर बहुत विश्वास था। काशीके पुस्तकालयमें इस ग्रन्थके प्रकाशकने कविवरके हाथकी लिखी हुई एक पुस्तक देखी थी, जिसमें सैकड़ों मन्त्रोंका संग्रह है। और उनमेंसे अनेक मन्त्रोंपर इस प्रकार लिखा हुआ है, "यह मन्त्र बहुत प्रभाविक है, इसे हमने स्वयं सिद्ध करके देखा है"। "यह हमारे एक मित्रने सिद्ध किया है।" "यह अमुक पुरुषने हमको लिखवाया था, उसने बहुत प्रशंसा की थी। परन्तु हमने सिद्ध नहीं किया।" "इससे अमुक कार्य होता है, इससे अमुक उपद्रव होते हैं" इत्यादि। इससे उनके मन्त्रज्ञ होनेमें किसीप्रकारका सन्देह शेष नहीं रहता है।

मन्त्रादि प्रयोगोंपर कविवरका दृढ विश्वास था। इसके लिये इतना ही प्रमाण बहुत है कि, उन्होंने भदैनी सुपार्श्वनाथका मुकद्दमा जीतनेके लिये तथा हाथरसमें विधर्मियोंका निरस्कार होनेके लिये अजमेरके तत्कालीन भट्टारक श्रीललितकीर्तिजीसे प्रार्थना की थी कि, इस विषयमें

आप कोई मन्त्र प्रयोग करें। (देखो पृष्ठ ११२–१३) और उनके विश्वाससे उक्त दोनो कार्योंमें सफलता भी हुई थी।

अपने पिताके समान कविवर भी पद्मावती देवीके भक्त थे। सुनते हैं, उन्हें पद्मावती देवी सिद्ध भी हो गई थी। पद्मावती स्तोत्रसे उनकी पद्मावतीके विषयमें जो भक्ति थी, वह अच्छी तरहसे प्रगट होती है। निमित्तज्ञानपर भी उन्हें विश्वास था, जिसके लिये उनकी बनाई हुई अर्हत्पासाकेवली प्रमाण है। उसमें उन्होंने लिखा है "जिनमार्गमें यह बडा निमित्त है। इसे हमने लिखा है कि, अपना वा पराया उपकार होय।"

वृन्दावनजीका जन्म संवत् १८४८ में हुआ था, और १८६३ में अर्थात् केवल १५ वर्षकी अवस्थामें उन्होने प्रवचनसारका पद्यानुवाद करना प्रारंभ कर दिया था। इससे पाठक जान सकते हैं कि, छुटपनहींसे उनकी बुद्धि कैसी प्रखर थी। इसीसे हमने कहा है कि, उन्हें दैवदत्त प्रतिभा थी। जो कविता नानाग्रन्थोंके अभ्याससे प्राप्त होती है, वह ऐसी अच्छी नहीं होती, जैसी दैवदत्त प्रतिभा होती है। उसे बहुत अभ्यासकी आवश्यकता नहीं होती है। किंचित् कारण मिलनेसे वह प्रस्फुटित हो उठती है। महानुभाव पडित टोडरमलजीका पाडित्य भी ऐसा ही सुना जाता है। कहते हैं कि, जिन पडितजीके पास टोडरमलजी विद्याभ्यास करते थे, वे पाठ पढ़ाते समय कहते थे, "भाई! तुम्हे क्या पढाऊ? जो बतलाता हू, वह तुम्हारे हृदयमें पहलेही उपस्थित देखता हू!"

यह जानकर पाठकोंको आश्चर्य होगा कि, वृन्दावनजी सवत् १८८० तक सस्कृत नहीं जानते थे। पडितेन्द्र जयचन्द्रजीकी चिट्ठीसे (पृष्ट १३२) यह बात स्पष्ट हो जाती है। उसमें उन्होंने सारस्वत व्याकरणके भाषानुवाद करनेके विषयमें लिखा है कि, "आप वहाँ काशीमें किसीसे सारस्वतचन्द्रिका पढ़ लेना। उससे बोध हो जावेगा।" परन्तु इसके पहले उन्होंने जो ग्रन्थ बनाये हैं, और उनमें विशेप करके चौवीसीपाठके प्रारंभके नामावली स्तोत्रमें संस्कृत शब्दोंका जैसा समावेश किया है, उन्हे देखकर यह कोई नहीं कह सकता है कि, वे सस्कृत नहीं जानते थे। सस्कृतके पढ़े विना भाषाका ऐसा अच्छा ज्ञान सचमुच ही आश्चर्यकारक है।

जान पड़ता है कि, पंडितप्रवर जयचन्द्रजीकी सम्मतिके अनुसार हमारे कविवरने संस्कृतका व्याकरण शीघ्र ही पढ लिया था। क्योंकि अर्हत्पासाकेवली नामकी पोथी जो बहुत करके संवत् १८९१ में बनाई गई है, पंडित विनोदीलालजीकृत संस्कृतकी मूल पुस्तकका पद्यानुवाद है। इसके सिवाय उन्होंने जो संवत् १८८४ की जेठ वदी ५ को जयपुरके सुप्रसिद्ध दीवान अमरचन्द्रजीको पत्र लिखा था, उसमें प्रथम श्लोक संस्कृतमें लिखा है.—

"प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्यं जिनेन्द्रं विघ्नसूदनम्।
लिख्यतेऽदो वरं पत्रं मित्रवर्गप्रमोददम्॥"

और उसका उत्तर जो अमरचन्दजीने भेजा है, वह भी सब संस्कृतमें भेजा है। यदि वे संस्कृतज्ञ न होते, तो उन्हें पत्रोत्तर भाषामें ही लिखा जाता। संस्कृतज्ञ होनेका एक तीसरा प्रमाण यह है कि, उन्होंने मथुरानिवासी पंडित चम्पारामजीसे आदिपुराणके यज्ञाधिकारकी खंडान्वयी संस्कृत टीका बनवाके मगवाई थी। जैसा कि, उनकी संवत् १८९५ की लिखी हुई चिट्ठीसे विदित होता है।

"जज्ञाधिकार जिन आदिपुराणजीका।
खण्डान्वयी सुगम तासु प्रबुद्ध टीका।
हे मित्र मोहि अति शीघ्र बनाय ठीका।
भेजो जिसे पढत भ्रांति मिटै सु हीका॥"

---

१ अर्हत्पासाकेवलीकी जो प्रति हमारे पास है, उसमें लिखा है—

संवत्सर विक्रम विगत, चन्द्र रंध्र दिगचन्द।
माघ कृष्ण आठैं गुरू, पूरन जयति जिनन्द॥

इसमें 'रंध्र' शब्दका अर्थ सन्देहयुक्त है। यदि रंध्रका अर्थ नव माना जावे, तो उक्त पोथी १८९१ की बनी ठहरती है। परन्तु इसी दोहेके नीचे संवत् १८८५ माघ शुक्ला चतुर्दशी लिखा है। जिससे भ्रम होता है कि, कहीं रंध्रका अर्थ आठ न होता हो। क्योंकि बननेके पीछे पुस्तककी प्रति लिखी गई होगी, पहले नहीं। जो हो, परन्तु इतना निश्चय है कि, पासाकेवली १८८० के पश्चात्की बनी हुई है, जब कविवर संस्कृतज्ञ हो चुके थे।

२ इस चिट्ठीमें भी रंध्र शब्द दिया है, जिससे आठ नवका भ्रम होता है।

इस ग्रन्थको उन्होंने पीछे पढा भी था. जो कि, उनकी "आदिपुराणस्तुति" से विदित होता है। उसमें लिखा है,—

"जिनसेनाचारज कविंदने, यह पुराण भाखा अघहानन।
वृन्दावन ताको रस चाखत, जो सब निगमागमको आनन॥"

इन सब प्रमाणोंसे कविवर पीछेसे संस्कृतके ज्ञाता हो गये थे, इस विषयमें अब कोई सन्देह नहीं रहता है।

कविवर वृन्दावनजीके समयमें जयपुरमें सर्वार्थसिद्धि, ज्ञानार्णव आदि अनेक ग्रन्थोंके भाषाटीकाकार पंडित जयचन्द्रजी, उनके पुत्र कविवर नन्दलालजी, पंडित मन्नालालजी, प्रजाके लिये अपने प्राणोंका उत्सर्ग-कर देनेवाले दीवान अमरचन्द्रजी, मथुरामें आदिपुराणके संस्कृत टीकाकार पं० चम्पारामजी, सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी[1], और प्रयागमें अजमेरवाले विद्वान् भट्टारक श्रीललितकीर्तिजी, आदि गण्यमान्य पुरुष जीवित थे। इनमेंसे अनेक महाशयोंके साथ कविवरका पत्रव्यवहार हुआ करता था। थोडेसे पत्र जो हमको काशीमें प्राप्त हुए हैं, वे इस ग्रन्थमें प्रकाशित किये जाते हैं। उनसे उस समयकी बहुत ही बातें विदित होंगी। यदि कविवरके कुटुम्बी जन परिश्रम करें और इस ओर ध्यान देवें, तो उनके संग्रहमें बीसों पत्र प्राप्त हो सकते हैं, जिनसे उस समयकी एकसे एक अपूर्व बातें मालूम हो सकती हैं।

कविवरके समयमें तेरहपंथ और गुमानपंथका उदय हो चुका था। कविवर बीसपंथी आम्नायके धारक थे। परन्तु उस समय सर्व साधारणके किंबहुना विद्वानोंके हृदयमें पंथोंके ऐसे झगडे नहीं थे, जैसे कि आजकल होते हैं। पंडित जयचन्द्रजीके इस विषयमें कैसे सुन्दर विचार थे, वे उनकी चिट्ठी पढनेसे विदित हो सकते हैं। और वृन्दावनजीके कैसे विचार थे, वे उनकी पद्मावती स्तोत्रके नीचे दी हुई टिप्पणीसे प्रगट होते हैं। यदि आजकलके विद्वान् तथा साधारण बुद्धिवाले सज्जन उक्त दोनों

---

१ जैनमहासभाके भूतपूर्व सभापति राजा लक्ष्मणदासजीके पिता। वे भी वैष्णव मतके उपासक बने हुए थे। कविवरने उन्हें 'जिनगुनमग्न' करनेके लिये चम्पारामजीको लिखा था।

तेरहपंथी और वीसपंथी पडितोंकी सी मध्यस्थवुद्धि धारण करके पंथोंके झगड़ोंसे उदासीन रहैं, तो समाजका बहुत कुछ कल्याण हो सकता है।

कविवरके समयकी दो घटनायें जानने योग्य हैं। एक तो भदैनी सुपार्श्वनाथके विषयमें श्वेताम्वरियोंका उपद्रव और दूसरा हाथरसके रथको रोकनेके लिये वैष्णवोंका किया हुआ विघ्न। पहली घटनासे यह जान पड़ता है कि, श्वेताम्वरी भाइयोंकी तीर्थोंके विषयमे दिगम्वरियोंके प्रति जो कृपा रहती है, वह बहुत दिनोंसे है। दिगम्वरियोंको प्रमादमें पड़े हुए पाकर प्रत्येक तीर्थपर इसी तरहसे उन्होंने अपने अड्डे जमा लिये हैं। और यह प्रयत्न कई सौ वर्षसे उन्होंने जारी कर रक्खा है. ऐसा जान पड़ता है। आपसके लड़ाई झगड़ोंके कारण देश वर्तमान दुर्दशाको प्राप्त हो गया है, तो भी उनके प्रयत्न वन्द नहीं होते हैं। वृन्दावनजी लिखते हैं कि, "काशीजीसे दिगम्वरियोंका तीर्थ उठानेके लिये श्वेताम्वरियोंने वड़ा भारी उपद्रव मचाया था। पहले काशीकी अदालतमें मुकद्दमा हुआ था, उसमें हार जानेपर अपील की थी, और उसमें भी हार होनेसे आखिर उन्होने इलाहावादकी हाईकोर्टमें वड़े जोर और प्रयत्नके साथ अपीलकी कार्रवाई की थी।" परन्तु आखिर साचको आच नहीं आई। दिगम्वरियोंकी ही विजय हुई। दूसरी घटना हाथरसके रथकी है। इसमे दौलतरामादि मिथ्यातियोंने वड़ा भारी विघ्न किया था। परन्तु आगरेके हाकिमने यात्रा होनेके लिये आज्ञा दे दी थी। पीछेसे उन लोगोंने भी प्रयागकी अदालतमें नालिश की थी। परन्तु सुनते हैं कि, उसमें भी जैनियोंकी विजय हुई थी। इसके पीछे अभी थोड़े ही वर्ष पहले सवत् १९४९ के मेलेमें भी हाथरसके मिथ्यधर्मियोंने रथयात्रामें विघ्न उपस्थित किया था। और उसमें भी वैष्णवोंको नीचा देखना पड़ा था। यह वात सब लोगोंने सुनी ही होगी।

कविवर वृन्दावनजीका देहान्त कब कहा और किस प्रकारसे हुआ, इस वातका कुछ भी पता नहीं लगा, यह खेदका विषय है। उनकी सबसे अन्तिम कृति प्रवचनसार है, जो विक्रम संवत् १९०५ में पूर्ण हुई थी।

उसके पीछेकी उनकी कोई भी कविता प्राप्त नहीं हुई। उस समय उनकी अवस्था ५७ वर्षकी थी। इसके पश्चात् उन्होने और कितनी आयु पाई, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है।

ग्रन्थरचना।

प्रवचनसार, तीसचौवीसीपाठ, चौवीसी पाठ, छन्दशतक, अर्हत्पासा-केवली, और फुटकर कविता (वृन्दावनविलास) ये छह ग्रन्थ कविवर वृन्दावनजीके बनाये हुए प्राप्त हुए हैं। इनके सिवाय बहुत करके एक समवसरणपूजापाठ भी उनका बनाया हुआ होगा। क्योकि सवत् १८९१ में उनकी इच्छा उक्त ग्रन्थके रचनेकी हुई थी और उसके विषयमें श्रीललितकीर्ति भट्टारकसे उन्होने अपनी चिट्ठीमें बहुतसी वाते पूछी थी। उन्हे लालजीकृत समवसरण पाठ पसन्द नही था। उसकी एक चिट्ठीमे, उन्होने अच्छी समालोचना की है। वे आदिपुराण और हरिवशपुराणके कथनके अनुसार उक्त ग्रन्थकी रचना करना चाहते थे। परन्तु अभीतक यह ग्रन्थ कही देखने सुननेमें नही आया। यदि होगा, तो कविवरके वशधरोके ही पास होगा। सभव है कि, उनके पास कविराजके और भी कोई दो चार अपूर्व ग्रन्थ हों।

प्रवचनसार।

कविवर वृन्दावनजीने जितने ग्रन्थ बनाये हैं, उनमे सबसे अच्छा, उनकी कीर्तिको चिरकालतक स्थिर रखनेवाला, और भाषा काव्यका शृगार स्वरूप यही ग्रन्थ है। जिसने इस ग्रन्थको देख लिया, उसे कविवरके अन्य ग्रन्थ देखनेकी आवश्यकता नही है। उनकी प्रतिभाका सर्वस्व इसीमें है। उसके बनानेमें उन्होंने परिश्रम भी सबसे अधिक किया है। दूसरे ग्रन्थ उन्होने लीलामात्रमें बना दिये हैं, परन्तु इसे तीन बार परिश्रम करके बनाया है। पहलीवार सवत् १८६३ में प्रारभ करके १९०५ में तीसरीवार इसे पूर्ण किया है। अर्थात् ४२ वर्षकी कवित्वशक्ति और अनुभवका निचोड इसमें भरा गया है। इस परसे पाठक विचार कर स-

कते हैं, कि यह ग्रन्थ कैसा अच्छा बना होगा। उपर्युक्त बातकी सत्यताके लिये प्रवचनसारकी प्रशस्तिमें लिखा है कि;—

"संवत विक्रमभूप, ठार सौ त्रेसठमाहीं।
यह सब बानक बन्यो, मिली सतसंगति छाहीं॥
तब श्रीप्रवचनसार, ग्रन्थको छन्द बनावों।
यही आस उर रही, जासतें निजनिधि पावों॥
तब छन्द रची पूरन करी, चित न रुची तब पुनि रची।
सोऊ न रुची तब अब रची, अनेकांतरससों मची॥"

तथा हि—

चार अधिक उनईस सौ, संवत विक्रमभूप।
जेठ महीनेमें कियो, पुनि आरंभ अनूप॥
पांच अधिक उनईस सौ, धवल तीज वैशाख।
यह रचना पूरन भई, पूजी मन अभिलाख॥

प्रवचनसार ग्रन्थ हमारे सम्प्रदायका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें निश्चयचारित्रका वर्णन है। इसके मूलकर्त्ता श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य और संस्कृतटीकाकार श्रीअमृतचन्द्रसूरि हैं। आगरानिवासी पांडे हेमराजजीने उक्त टीकाके अनुसार एक उत्तम भाषाटीका बनाई है और हमारे कविवरने उक्त तीनों ग्रन्थोंके अनुसार इस ग्रन्थकी पद्यबद्ध रचना की है। जिसप्रकारसे नाटकसमयसारकी पद्यरचना करके बनारसीदासजीने भाषासाहित्यको एक रत्नसे आभूषित किया था, उसीप्रकारसे यह ग्रन्थरत्न भी भाषा कविताके हृदयका हार बन गया है। अन्तर केवल इतना है कि, नाटकसमयसारकी प्रसिद्धि अधिक हो गई है, और यह अभी तक गुप्त है। बनारसीदासजीने जो पद्यरचना की है, वह विशेष स्वतन्त्रतासे की है, परन्तु इस ग्रन्थमें यह बात नहीं है। इसे मूल ग्रन्थकी पद्यबद्ध टीका कहे, तो कुछ अनुचित नहीं होगा। क्योंकि इसमें टीकाओंके किसी भी विषयको नहीं छोडा है। हर्षका विषय है कि, उक्त ग्रन्थका छपना प्रारंभ हो गया है। वह बहुत जल्दी पाठकोंके दृग्गोचर होगा।

मूल प्रवचनसार ग्रन्थ कैसा अपूर्व है, यह कहनेकी आवश्यकता नही है। और उसकी प्रशसा करनेकी हमारी शक्ति भी नही है। इसकी उत्तमता वही जान सकते हैं, जो इसके मर्मको समझनेकी शक्ति रखते हैं। ग्रन्थकी उत्तमतापर मोहित होकर वाम्बे यूनिवर्सिटीने अपने एम् ए. के कोर्समें इसे स्थान दिया है। और इसी उत्तमतापर मुग्ध होकर कविवर वृन्दावनजीने इसका पद्यानुवाद किया है।

अनुवाद कैसा सुन्दर हुआ है, यह जाननेके लिये हम थोड़ेसे ऐसे पद्य जो सबकी समझमें आ सकें, यहां उद्धृत कर देते हैं।

(१)

आगम ज्ञानरहित जो मुनिवर, कायकलेश करै तिरकाल।
ताको स्वपरभेद नहिं सूझत, आगम तीया नयन विशाल॥
तब तहँ भेदज्ञान बिन कैसे, चलै शुद्ध शिवमारग चाल।
सो विपरीतरीतकी धारक, "गावत तान ताल बिनु ख्याल"॥

(२)

तत्त्वनमें रुचि परतीत जो न आई तो धौं,
कहा सिद्ध होत कीन्हें आगम पठापठी।
तथा परतीत प्रीत तत्त्वहूमें आई पै न,
त्यागे रागदोष तौ तो होत है गठागठी॥
तत्रै मोक्षसुख वृन्द पाय है कदापि नाहिं,
तातें तीनों शुद्ध गहु छांड़िके हठाहठी।
जो तू इन तीन बिन मोक्षसुख चाहै तौ तो,
"सूत न कपास करै कोरीसों लठालठी"॥

(३)

जाके शुद्ध सहज सुरूपको न ज्ञान भयौ,
और वह आगमको अच्छर रटतु है।
ताके अनुसार सो पदारथको जानै सर,
धानैं औ ममत्व लिये क्रियाको अटतु है॥

तहां पुन्व खिरै नित नूतन करम बंधै,
  "गोरखको धंधा" नटबाजीसी नटतु है।
"आगेको वटत जात पाछे बाछरू चबात,
  जैसे दृगहीन नर जेवरी वटतु है॥"

(४)

जाने निज आतमाको जान्यो भेदज्ञान करि,
  इतनो ही आगमको सार हंस चंगा है।
ताको सरधान कीनो प्रीतिसों प्रतीति भीनों,
  ताहीके विशेपमें अभंग रंग रंगा है।
वाहीमें त्रिजोगको निरोधिकै सुथिर होय,
  तबै सर्व कर्मनिको क्षपत प्रसंगा है।
आपुहीमें ऐसे तीनों साधे वृन्द सिद्धि होत,
  जैसे "मन चंगा तो कठौतीमाहि गंगा है॥"

(५)

जिसके तन आदि विपै ममता,
  वरतै परमानहुके परमानी।
तिसको न मिलै शिव शुद्ध दशा,
  किन हो सब आगमको वह ज्ञानी।
अनुराग कलंक अलंकित तासु,
  चिदंक लसै हमने यह जानी।
जिमि लोक विपै कहनावत है,
  "यह तांत बजी तब राग पिछानी॥"

(६)

ज्यों पारस संजोगतें, लोह कनक ह्वै जाय।
गरल अमियसम गुन धरत, उत्तम संगति पाय॥

(७)

जैसे लोहा काठसँग, पहुँचै सागर पार।
तैसे अधिक गुनीन सँग, गुनहि तरहिं निवार॥

(८)

ज्यों मलयागिरिके विषै, बावन चंदन जान।
परसि पौन तसु और तरु, चंदन होंहिं महान॥

(९)

देख कुसंगति पायकै, होंहिं सुजन सविकार।
अगनिजोग जिमि जल गरम, चंदन होत अँगार॥

श्रीचतुर्विंशतिजिनपूजा।

जैन समाजमें इस ग्रन्थकी वहुत प्रसिद्धि है। आजतक किसी भी पूजा पाठकी इतनी प्रसिद्धि नहीं है, जितनी कविवर वृन्दावनजीकृत चौवीसी पाठकी है। यह वना भी ऐसा अच्छा है कि, भजनप्रेमी लोगोंके हृदयका हार वन गया है।

इस ग्रन्थके वननेके विषयमें एक आश्चर्यजनक किंवदन्ती प्रसिद्ध है। कहते हैं कि, एक वार पश्चिमकी ओरसे जैनयात्रियोंका वड़ा भारी संघ आया था, और भेलपुरामें आकर ठहरा था। उसमेंके कुछ सज्जन वृन्दावनजीसे मिले और इस वातका जिकर किया कि, कल कोई नवीन पाठ किया जावे, तो वहुत आनन्द हो। इसके उत्तरमें कविवरने कहा, "वहुत अच्छा, कल नवीन पाठ ला दूंगा," और घर आकर रातभरमें इस पाठकी रचना कर डाली। दूसरे दिन यात्रियोंके हाथमें ग्रन्थ दे दिया। तदनुसार उन्होंने वड़े उत्सवके साथ नृत्यगायनपूर्वक चौवीसी पूजन करके अपने जन्मको सफल किया। अनेक लोगोंका इस विषयमें ऐसा कथन है कि, कविवरने पहले एक वड़ा विस्तृत चौवीसी पाठ वनाया था, जिसके करनेमें कई दिन लगते थे। यात्रियोंके कहनेसे उसी पाठको रातभरमें संकोच करके इस छोटे पाठकी रचना की थी। जो हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं है, कि कविवरकी कवित्वशक्ति वहुत विचित्र थी। ऊपर विचार करनेसे उक्त किंवदन्तियोंको असत्य कहनेका साहस नहीं होता।

चौवीसीपाठकी प्रशस्तिमें उसके वनानेका समय नहीं है। परन्तु वृन्दावनजीके हाथकी लिखी प्रतिमें जिसपरसे कि हमने चौवीसीपाठ छ-

पवाया है, " सवत् अठारहसौ पचहत्तर १८७५ कार्तिककृष्णा अमावस्या गुरुवारको यह पुस्तक पूर्ण भया । लिखित वृन्दावनेन निजपरोपकारार्थम्। " इस प्रकार लिखा है । इससे स्पष्ट है कि, सवत् १८७५ में इस ग्रन्थकी रचना हुई है ।

यद्यपि यह ग्रन्थ सर्वत्र प्रसिद्ध है। तौ भी हम सर्व साधारणके परिचयके लिये उसमेंसे ३-४ पद्य यहा उद्धृत कर देते हैं.—

(१)

छप्पय ।

(वीररस रूपकालकार)

तप तुरंग असवार धार, तारन विवेक कर ।
ध्यान शुकल असि धार, शुद्ध सुविचार सुवखतर ॥
भावन सेना धरम, दशों सेनापति थापे।
रतन तीन धरि सकति, मंत्र अनुभौ निरमापे ॥
सत्तातल सोऽहं सुभट धुनि, त्याग केतु शत अग्र धरि ।
इहिविधि समाज सज राजको, अर जिन जीते कर्म अरि ॥

(२)

(अनौष्ठ्य यमकालकार-शान्तरस)

चारु चरन आचरन, चरन चितहरन चिहन चर ।
चद चंद तन चरित, चंद थल चहत चतुर नर ॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर ।
चंचल चलित सुरेश, चूलनुत चक्र धनुरहर ॥
चरअचरहितू तारन तरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि ।
जिनचदचरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रचि रुचि ॥

(३)

(लाटानुप्रास)

वाहर भीतरके जिते, जाहर अर दुखदाय ।
ता हरकर अरजिन भये, साहर शिवपुर राय ॥

(४)

(विशेषोक्ति)

घनाकार करि लोक पट, सकल उदधि मसि तंत।
लिखै शारदा कलम गहि, तदपि न तुव गुन अंत॥

तीसचौवीसी पाठ।

इस ग्रन्थका नाम बहुत थोड़े लोगोंने सुना होगा। कारण इसका यही जान पड़ता है कि, अभी तक यह लोगोंके परिचयमें नहीं आया है। हमको विश्वास है कि, प्रकाशित होनेपर चौवीसीपाठके समान इसकी भी जगह २ कीर्ति फैलजावेगी। हो सका तो आगामी वर्षमें जैनग्रन्थरत्नाकर-कार्यालयद्वारा इस ग्रन्थके प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया जावेगा।

तीसचौवीसी पाठ इस समय हमारे पास उपस्थित नहीं है। परन्तु उसकी कविता कैसी है, यह जाननेके लिये हमारे एक मित्रने उसमेंसे थोड़ेसे पद्य चुनकर भेजे हैं। पाठकोंके परिचयके लिये हम उन्हें यहा प्रकाशित करते हैं.—

(१)

गीता।

रमनीय जल दमनीय मल, कमनीय कल शमनीय है।
वमनीय दुख यमनीय सुख, अमनीय रुप गमनीय है॥
जयतीत त्रिभुवन नीत सुरगिर सीत ऐरावीत है।
धरि प्रीति ताहि जजीत परम पुनीत धर्म लहीत है॥

(२)

आनन्दकन्द जिनंद चंद, अमंद वंदन कीजिये।
पनु दरव छंद सुछंद दे, निरफंद थानक लीजिये॥ जय०॥

(३)

सारंगी।

गंगा भंगा पानी चंगा झारी धारी आनी है।
धारा तीनो ताको दीनो तीनो तापं हानी है॥

तीजो मेरं ताके हेरं ऐरावर्तं राजै है।
भावी देवं कीजे सेवं जो आनंदै साजै है॥

(४)

माधवी, सिंहावलोकन (मुक्तपदगुप्त)

मंदर मेरु विराजतु है, नित पुष्करदीपविषै अति सुन्दर।
सुन्दर दक्षिण भर्त वसै तित, तीत जिनेसुर धर्मधुरंधर॥
धर्म धुरंधर सेवत हैं गुन, वृंद सुध्यावत जाहि पुरंदर।
जाहि पुरन्दर ध्यावत ताहि, सु थापहुं पूजनको जिनमदर॥

खेद है कि, हमारे मित्रने केवल यमकानुप्रासयुक्त कविता ही नमूनेके लिये भेजी और शीघ्रताके कारण दूसरी कविता मगानेके लिये हमें अवकाश न मिल सका। ७–८ वर्ष पहले खिमलासा (सागर) के भडारमे मैंने उक्त ग्रन्थ देखा था। मुझे स्मरण है कि, उसमे अनेक चित्रकाव्य, और नानाप्रकारके भावपूर्ण काव्य हैं। इसलिये हम कह सकते हैं कि, कविवरकी कविता केवल यमक और अनुप्रासोसेही भरी हुई नहीं है। उसमे कविताके सब गुण हैं।

इस ग्रन्थके बनानेके विषयमें कविवरने प्रशस्तिमें लिखा है कि—

"एक समय काशीविषै, भयो ससक्रत पाठ।
काशीनाथ कराइयो, बन्यो अनूपम ठाठ॥
तबसौं यह अभिलाष थी, भाषा होय मनोग।
अबै मिल्यो सब जोग तब, भयो सुधारस भोग॥"

यथा,—

"दरबँ तँत्त्व गुण केवल सु, संवत विक्रमवान।
माघ धवल पांचें नवल, पूरण परम निधान॥"

इससे जान पड़ता है, चौबीसीपाठको पूर्ण करके इसी ग्रन्थकी रचना प्रारंभ की गई होगी। चौबीसीपाठ कार्तिक सवत् १८७५ में तयार हुआ था, और यह माघ सवत् १८७६ में तयार हो गया था।

प्रायः हिन्दी भाषाकी जितनी कविता देखी जाती है, वह प्रायः दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय, कुडलिया, कविता, सवैया आदि छन्दोंमे ही पाई जाती है। परन्तु हमारे कविवर लकीरके फकीर नही थे। उक्त दोनों पाठोंके देखनेसे यह वात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अपनी रुचिके अनुसार जिनका सस्कृत भाषामें ही अधिक प्रचार है, ऐसे वसततिलका, स्रग्धरा, आर्या, रथोद्धता, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, लक्ष्मीधरा आदि छन्दोंका खूब स्वतन्त्रताके साथ उपयोग किया है और इसी कारण एक नवीन वस्तुके समान उनकी कविताका सविशेष आदर हुआ है।

छन्दशतक।

छन्दशास्त्रका यह वहुत ही उत्तम ग्रन्थ है। निरन्तर कार्यमें आने योग्य अनुमान १०० प्रकारके छन्दोंके वनानेकी विधि इसमें वतलाई गई है। विद्यार्थियोंको वहुत थोडे परिश्रमसे यह ग्रन्थ उपस्थित हो सकता है। इसके पहले छन्दशास्त्रका ऐसा सरल, सुपाठ्य और थोडेमें वहुत प्रयोजन सिद्ध करनेवाला ग्रन्थ दूसरा नहीं वना था। सस्कृतके वृत्तरत्नाकर आदि ग्रन्थोंकी नाई प्रत्येक छन्दके लक्षणनामादि उसी छन्दमें वतलाये हैं और विशेष खूवी यह है कि, एक प्रकारसे सारा ग्रन्थ जिनशासनकी अच्छी २ शिक्षाओंसे भरा हुआ है। यदि जैनपाठशालाओंमें इस ग्रन्थको पढानेका प्रयत्न किया जावेगा, तो वहुत लाभ होगा। इस ग्रन्थके विषयमें हमको वहुत कुछ लिखना था, परन्तु शीघ्रताके कारण नहीं लिख सके। अस्तु, अव यह ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष उपस्थित है, वे इसकी उत्तमताका स्वय विचार कर लेंगे। स्थान २ पर टिप्पणिया देकर हमसे जितना हो सका है, ग्रन्थका अभिप्राय समझानेका प्रयत्न किया है।

यह ग्रन्थ कविवरने अपने सुपुत्र वावू अजितदासजीके पढानेके लिये वनाया था। और केवल १८ दिनमें वनाया था। इससे सहज ही समझमें आ सकता है कि, कविवर लीलामात्रमें कैसे अच्छे ग्रन्थ वनानेकी शक्ति रखते थे। एक वात यह भी ध्यानमें रखनेके योग्य है कि, पहले लोग अपनी सतानको सुशिक्षित करनेके लिये कैसे २ प्रयत्न करते थे। जव कि

आजकलके मा वाप अपनी संतानको केवल चतुष्पद वनाकर ही कृतकृत्य हो जाते हैं।

संवत् १८९८ मे इस ग्रन्थकी रचना हुई थी। पौष कृष्णा चतुर्दशीको आरंभ करके माघ कृष्णा २ को इसकी समाप्ति कर दी गई थी।

अर्हत्पासाकेवली।

यह एक शकुनावली है। पडित विनोदीलालजीकृत सस्कृत ग्रन्थके आधारसे इसकी रचना हुई है। इसके विषयमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नही है। छोटीसी पुस्तक है। जैनहितैषी कार्यालयसे पृथक् प्रकाशित हुई है।

इन पांच ग्रन्थोंके सिवाय एक ग्रन्थ यह वृन्दावनविलास है। इसके विषयमे हम कुछ नहीं लिखना चाहते। काशीके सरस्वतीभडारसे यह ग्रन्थ संग्रह किया गया है। दूसरी प्रति नही होनेसे हमें इसके सशोधनमें वहुत परिश्रम करना पड़ा है। इतनेपर भी अनेक स्थान भ्रमपूर्ण रह गये हैं। हमको विश्वास है कि, इस सग्रहके सिवाय कविवरकी और भी वहुतसी कवितायें होंगी। 'शीलमाहात्म्य' नामकी कविता जो ग्रन्थके अन्तमे छपी है, हमारे सग्रहमें नहीं थी। पीछेसे आरा जैनकन्यापाठशालाकी अध्यापिका जानकीवाईके द्वारा प्राप्त हुई है। यदि आगे अन्य कवितायें प्राप्त हुई, तो हम उन्हें आगामी सस्करणमे प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

हमारा विचार था कि, कविवरका जीवनचरित्र और उनके ग्रन्थोंकी आलोचना विस्तारपूर्वक लिखें। परन्तु प्रकाशक महाशयकी शीघ्रता और अवकाशके सकोचसे ज्यों त्यों करके ये दोनो विषय समाप्त कर दिये हैं। लिख करके एक वार विचार करनेका भी अवसर नहीं मिल सका है। इस लिये सभव है कि, इसमें वहुतसे दोष रह गये होंगे। उनके विषयमें क्षमा मागकर और इसके गुणोंके ग्रहण करनेकी प्रार्थना करके हम इस लेखको समाप्त करते हैं। और अन्तमे जीवनचरित्रसंवंधी अनेक

नोट आरानिवासी श्रीयुत बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीसे प्राप्त हुए हैं, इसकारण उनका हृदयसे आभार मानकर श्रीजिनेन्द्रदेवसे प्रार्थना करते हैं कि, अपने सम्प्रदायके कवियोका परिचय देनेके लिये हमको इससे अधिक सामर्थ्य और साधन प्राप्त होवें। जब तक हम लोग अपने पूर्वपुरुषोंके गौरवको न जानेंगे, उनके चरित्रोंको नहीं पढेंगे, तब तक हमारी अभ्युन्नति नहीं होवेगी। अलमतिविस्तरेण—

जीतेकरकी चाल-बम्बई
१४-३-०८

विदुषां चरणसरोरुहसेवी—
श्रीनाथूराम प्रेमी।

शुद्धिपत्र।

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८—१३	(ज त ज र)	(त त ज र–ज त ज र)
११७—११	रध्रं	रध्रं
१२६—१	उंरग	उंरग

सूचीपत्र।

श्रीपरमात्मने नमः.

अथ

काशीवासी कविवर वृंदावनकृत

वृन्दावनविलास।

(१)

अथ जिनेन्द्रस्तुतिर्लिख्यते।

(शैरकी रीतिमें तथा और २ रागनियोंमें भी बनती है।)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुमारा बाना है।
मत मेरी बार अवार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है ॥टेक॥

१

त्रैकालिक वस्तु प्रतच्छ लखो, तुमसों कछु बात न छाना है।
मेरे उर आरत जो वरतै, निहचै सब सो तुम जाना है॥
अवलोकि विथा मत मौन गहो, नहिं मेरा कहीं ठिकाना है।
हो राजिवलोचन सोचविमोचन, मै तुमसों हित ठाना है॥श्री०

२

सब ग्रन्थनिमें निरग्रंथनिनें, निरधार यही गणधार कही।
जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायकज्ञानमही॥

यह बात हमारै कान परी, तब आन तुमारी सरन गही।
क्यों मेरी बार विलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही॥श्री०

३

काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्गविमाना है।
काहूको नागनरेशपती, काहूको ऋद्धि निधाना है॥
अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है।
इनसाफ करो मत देर करो, सुखवृंद भरो भगवाना है॥श्री०

४

खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है।
तुम हो समरत्थ न न्याव करो, तब बंदेका क्या चारा है॥
खल घालक पालक बालकका, नृपनीति यही जगसारा है।
तुम नीतनिपुन त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है॥ श्री०

५

जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमहीको माना है।
तुमरे ही शासनका स्वामी! हमको शरना सरधाना है॥
जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसों जमराज डराना है।
यह सुजस तुम्हारे साँचेका, जस गावत वेदपुराना है॥ श्री०

६

जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है।
अघ छोटा मोटा नाशि तुरित, सुख दिया तिन्हें मनमाना है।

---

(१) कविने इस पाठमें पहिले 'तुम हो समरत्थ [illegible] लगि दौर हमारा है" ऐसा बनाया था। (२) [illegible] "तुमरी शरनागतधारा है" ऐसा बनाया था।

पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढ़ा असमाना है।
भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुबेर समाना है॥ श्री०

७

चिन्तामनपारस कल्पतरू, सुखदायक ये परधाना हैं।
तुव दासनके सब दास यही, हमरे मनमें ठहराना हैं॥
तुव भक्तनको सुरइंदपदी, फिर चक्रपतीपद पाना है।
क्या बात कहों विस्तार बड़ी, वे पावें मुक्ति ठिकाना है॥ श्री०

८

गति चार चौरासी लाखविषै, चिन्मूरत मेरा भटका है।
हो दीनबन्धु करुणानिधान, अबलों न मिटा वह खटका है॥
जब जोग मिला शिवसाधनका, तब विघन कर्मने हटका है।
तुम विघन हमारा दूर करो, सुख देहु निराकुल घटका है॥श्री०

९

गजग्राहग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है।
ज्यों सागर गोपदरूप किया, मैनाका संकट टारा है॥
ज्यों सूलीतै सिंहासन औ, वेड़ीको काट विडारा है।
त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकों आश तुमारा है॥ श्री०

१०

ज्यों फाटक टेकत पाँय खुला, औ सांप सुमन करि डारा है।
ज्यों खड्ग कुसुमका माल किया, बालकका जहर उतारा है॥
ज्यों सेठ विपत चकचूरि पूर, घर लछमीसुख विस्तारा है।
त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु, मोकों आश तुमारा है॥ श्री०

११

जदपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है।
चिनमूरत आप अनंत गुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है॥
तदपि भक्तनकी भीति हरो, सुख देत तिन्हें जु सुहाना है।
यह शक्ति अचिंत तुम्हारीका, क्या पावै पार सयाना है॥श्री०

१२

दुखखंडन श्रीसुखमंडनका, तुमरा प्रन परम प्रमाना है।
वरदान दया जस कीरतका, तिहुंलोकधुजा फहराना है॥
कमलाधरजी! कमलाकरजी! करिये कमला अमलाना है।
अब मेरि विथा अवलोक रमापति, रंच न वार लगाना है॥श्री०

१३

हो दीनानाथ अनाथहितू, जनदीन अनाथ पुकारी है।
उदयागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है॥
ज्यों आप और भवि जीवनकी, ततकाल विथा निरवारी है।
त्यों 'वृंदावन' यह अर्ज करै प्रभु, आज हमारी बारी है॥ श्री०

इति जिनेंद्रस्तुतिः समाप्ता॥ १॥

---

(२)

अथ जिनवचनस्तुति।

(छंद पूर्वोक्त।)

हो करुणासागर देव तुमी, निरदोष तुमारा वाचा है।
तुमरे वाचामें हे! स्वामी. मेरा मन साँचा राचा है॥ टेक॥

१

बुधि केवल अप्रतिछेदविषै, सब लोकालोक समाना है ।
मनु ज्ञेय गरास विकाश अटंक, झलाझल जोत जगाना है ॥
सर्वज्ञ तुमी सबव्यापक हो, निरदोषदशा अमलाना है ।
यह लच्छन श्रीअरहंत विना, नहिं और कहीं ठहराना है॥हो करु०

२

धर्मादिक पंच वसै जहँलों, वह लोकाकाश कहावै है ।
तिस आगें केवल एक अनंत, अलोकाकाश रहावै है ॥
अवकाश अकाशविषै गति औ, थिति धर्म अधर्म सुभावै है ।
परिवर्त्तन लच्छन काल धरै, गुणद्रव्य जिनागम गावै है॥हो करु०॥

३

इक जीवो धर्माधर्म दरव ये, मध्य असंख प्रदेशी है ।
आकाश अनंत प्रदेशी है, ब्रह्मंड अखंड अलेशी है ॥
पुग्गलकी एक प्रमाणू सो, यद्यपि वह एकप्रदेशी है ।
मिलनेकी सकंत खभावीसों, होती बहुखंध सुलेशी है॥हो करु०

४

कालाणू भिन्न असंख अणू, मिलनेकी शक्ति न धारा है ।
तिसतै कायाकी गिनतीमें, नहिं काल दरबको धारा है ॥
हैं खयंसिद्ध षटद्रव्य यही, इनहीका सर्व पसारा है ।
निर्वाध जथारथ लच्छन इनका, जिनशासनमें सारा है ॥ हो०॥

५

सब जीव अनंतप्रमान कहे, गुन लच्छन ज्ञायकवंता है ।
तिसतै जड़ पुग्गल मूरतकी, है वर्गणरास अनंता है ॥

तिसतै सब भावियकालसमयकी, रास अनंत भनंता है।
यह भेद सुभेदविज्ञानविना, क्या औरनको दरसंता है? ॥ हो०॥

६

इक पुग्गलकी अविभाग अणू, जितने नभमें थिति कीनाजी।
तितनेमहँ पुग्गल जीव अनंत, वसैं धर्मादि अछीना जी॥
अवगाहन शक्ति विचित्र यही, नभकी वरनी परवीनाजी।
इसही विधिसों सबद्रव्यनिमें, गुन शक्ति वसै अनकी नाजी॥हो०॥

७

इक काल अणूपरतें दुतियेपर, जाति जवै गत मंदी है।
इक पुग्गलकी अविभाग अणू, सो समय कही निरद्वंदी है॥
इसतै नहि सूच्छमकाल कोई, निरअंश समय यह छंदी है।
यातै सब कालप्रमान बँधा, वरनी श्रुति जैति जिनंदी है॥हो०॥

८

जव पुग्गलकी अविभाग अणू, अतिशीघ्र उताल चलानी है।
इक समयमाहिं सो चौदह राजू, जात चली परमानी है॥
परसै तहँ सर्वपदारथकों, क्रमसौ यह भेद विधानी है।
नहिं अंश समयका होत तहाँ, यह गतिकी शक्ति वखानी है॥हो०॥

९

गुन द्रव्यनिके आधार रहै, गुनमें गुन और न राजै है।
न किसी गुनसों गुन और मिलै, यह और विलच्छनता जै है॥
ध्रुव वै उतपाद सुभाव लिये, तिरकाल अवाधित छाजै है।
षट हानरु वृद्धि सदीव करै, जिनवैन सुनें भ्रम भाजै है॥ हो०॥

१०

जिम सागरवीच कलोल उठी, सो सागरमांहि समानी है।
परजै करि सर्व पदारथमें तिमि, हान रु वृद्धि उठानी है॥
जब शुद्ध दरबपर दृष्टि धरै, तब भेदविकल्प नसानी है।
नयन्यासनतैं बहु भेद सु तो, परमान लियें परमानी है॥ हो०॥

११

जितने जिनवैनके मारग है, तितने नयभेद विभाखा है।
एकांतकी पच्छ मिथ्यात वही, अनेकांत गहै सुखसाखा है॥
परमागम है सर्वंग पदारथ, नय इकदेशी भाषा है।
यह नय परमान जिनागमसाधित, सिद्ध करै अभिलाषा है॥हो०॥

१२

चिन्मूरतके परदेशप्रति, गुन है सु अनंत अनंता जी।
न मिलै गुन आपुसमें कबहूं सत्ता निज भिन्न धरंता जी॥
सत्ता चिनमूरतकी सबमें, सब काल सदा वरतंता जी।
यह वस्तुसुभाव जथारथको, जिय सम्यकवंत लखंता जी॥ हो०

१३

सविरोधविरोधविवर्जित धर्म, धरें सब वस्तु विराजै है।
जहँ भाव तहां सु अभाव वसै, इन आदि अनंत सुछाजै है॥
निरपेच्छित सो न सधै कबहूं, सापेक्षा सिद्ध समाजै है।
यह अनेकांतसों कथनमथनकरि, स्यादवाद धुनि गाजै है॥हो०॥

१४

जिस काल कथंचित अस्ति कही, तिस काल कथंचित नाहीं है।

उभयातमरूप कथंचित सो, निरवाच कथंचितता ही है ॥
पुनि अस्तिअवाच्य कथंचित त्यों, वह नास्तिअवाच्य कथाहीहै
उभयातमरूपअकथ्य कथंचित, एकहि काल सुमाही है॥ हो०॥[1]

१५

यह सात सुभंग सुभावमयी, सब वस्तु अभंग सुसाधा है ।
परवादिविजय करिवे कहँ श्रीगुरु, स्यादहिवाद अराधा है ॥
सरवज्ञप्रतच्छ परोच्छ यही, इतनो इत भेद अबाधा है ।
'वृंदावन' सेवत स्यादहिवाद, कटै जिसतैं भवबाधा है ॥
हो करुणासागर देव तुमी, निर्दोष तुमारा वाचा है ।
तुमरे वाचामें हे स्वामी, मेरा मन साँचा राचा है ॥ १५ ॥

इति जिनवानीस्तुति ।

---

(३)

अथ गुरुस्तुतिर्लिख्यते ।

शैर ।

जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे,
संसार विषमखारसों जिनभक्त उधारे ॥ टेक ॥
जिनवीरके पीछें यहां निर्वानके थानी ।

---

(१) इस चौथे चरणको कविवरने—"निरवाचदुधातमरूप कथचित् एकहि काल सुमाही है" ऐसा लिखा था । परन्तु पीछेंसे कविने ही उक्त चरणको हासियेपर उक्तप्रकारसे बनाकर लिखा है । सशोधक ।

वासठवरषमें तीन हुए केवलज्ञानी ॥
फिर सौ वर्षमें पांच ही श्रुतकेवली भये।
सर्वांग द्वादशांगका उमंग रस लये ॥ जै० ॥ १ ॥

तिस वाद वरस एकशतक और तिरासी।
इसमें हुए दशपूर्व ग्यार अंगके भासी ॥
ग्यारे महामुनीश ज्ञानदानके दाता।
गुरुदेव सोइ देहिंगे भवि वृंदको साता ॥ जै० ॥ २ ॥

तिस वाद वरस दोइ शतक वीसके माहीं।
मुनि पांच ग्यारैअंगके पाठी हुए आहीं ॥
तिसवाद वरस एकसौ अठारमें जानी
मुनि चार हुए एक आचारांगके ज्ञानी ॥ जैवन्त० ॥ ३ ॥

तिसवाद हुए हैं जु सुगुरु पूर्वके धारक।
करुनानिधान भक्तको भवसिंधु उधारक ॥
करकंजतैं गुरु मेरे ऊपर छांह कीजिये।
दुखदंदको निकंदके अनंद दीजिये ॥ जैवन्त० ॥ ४ ॥

यों वीरके पीछेंसों वरष छस्सौ तिरासी।
तब तक रहे इक अंगके गुरुदेव अभ्यासी ॥
तिस वाद कोई फिर न हुए अगके धारी।
पर होते भये महा सु विद्वान उदारी ॥ जैवन्त ॥ ५ ॥

जिनसों रहा इस कालमें जिनधर्मका साका।
रोपा है सातभंगका अभंग पताका ॥

गुरुदेव नयंधरको आदि दे वड़े नामी ।
　निरग्रंथ जैनपंथके गुरुदेव जो स्वामी ॥ जैवन्त ॥ ६ ॥
भाखों कहां लों नाम वड़ी वार लगैगा ।
　परनाम करों जिस्से वेड़ा पार लगैगा ॥
जिसमेंसे कुछेक नाम सूत्रकारके कहों ।
　जिन नामके परभावसों परभावकों दहों ॥ जैवंत ॥ ७ ॥
तत्त्वार्थसूत्र नामि उमास्वामि किया है ।
　गुरुदेवने संछेपसे क्या काम किया है ॥
जिसमें अपार अर्थने विश्राम किया है ।
　बुधवृंद जिसे ओरसे परनाम किया है ॥ जैवंत ॥ ८ ॥
वह सूत्र है इस कालमें जिनपंथकी पूंजी ।
　सम्यक्त्वज्ञानभाव है जिस सूत्रकी कूंजी ॥
लड़ते है उसी सूत्रसों परवादके मूंजी ।
　फिर हारके हट जाते है इकपक्षके लूंजी ॥ जैवन्त ॥ ९ ॥
स्वामी समन्तभद्र महाभाष्य रचा है ।
　सर्वंग सात भंगका उमंग मचा है ॥
परवादियोंका सर्व गर्व जिस्से पचा है ।
　निर्वान सदनका सोई सोपान जचा है ॥ जैवन्त ॥ १० ॥
अकलंकदेव राजवारतीक वनाया ।
　परमान नय निच्छेपसों सव वस्तु वताया ॥
इश्लोकवारतीक विद्यानंदजी मंडा ।
　गुरुदेवने जड़मूलसों पाखंडको खंडा ॥ जयवंत ॥ ११ ॥

गुरु पादपूज्यजी हुए मरजादके घोरी।
सर्वार्थसिद्धि सूत्रकी टीका जिन्हों जोरी॥
जिसके लखेसों फिर न रहै चित्तमें भरम।
भवि जीवको भासै है स्वपरभावका मरम॥ जैवन्त॥१२॥

धरसेन गुरूजी हरो भविवृंदकी विथा।
अग्रायणीय पूर्वमें कुछ ज्ञान जिन्हें था॥
तिनके हुए दो शिष्य पुष्पदंत भुजबली।
धवलादिकोंका सूत्र किया जिस्से मग चली॥ जैवन्त॥१३॥

गुरु औरने उस सूत्रका सब अर्थ लहा है।
तिन धवल महाधवल जयसुधवल कहा है॥
गुरु नेमचंद्रजी हुए धवलादिके पाठी।
सिद्धान्तके चक्रीशकी पदवी जिन्हों गांठी॥ जैवन्त॥१४॥

तिन तीनों ही सिद्धान्तके अनुसारसों प्यारे।
गोमट्टसार आदि सुसिद्धांत उचारे॥
यह पहिले सु सिद्धांतका विरतंत कहा है।
अब और सुनो भावसों जो भेद महा है॥ जैवन्त॥१५॥

गुणधर मुनीशने पढ़ा था तीजा पराभृत।
ज्ञानप्रवादपूर्वमें जो भेद है आश्रित॥
गुरु हस्तिनागजीने सोई जिनसों लहा है।
फिर तिनसों जतीनायकने मूल गहा है॥ जैवंत॥१६॥

---

१ प्रथमश्रुतस्कन्धका।

तिन चूर्णिका स्वरूप तिस्से सूत्र बनाया।
परमान छै हजार यों सिद्धांतमें गाया॥
तिसका किया उद्धरण समुद्धरण जु टीका।
बारह हजारके प्रमान ज्ञानकी ठीका॥ जैवंत॥ १७॥

तिसहीसे रचा कुंदकुंदजीने सुशासन।
जो आत्मीक पर्म धर्मका है प्रकाशन॥
पंचास्तिकाय समयसार सारप्रवचन।
इत्यादि सुसिद्धान्त स्यादबादका रचन॥ जैवंत॥ १८॥

सम्यक्त्व ज्ञान दर्श सुचारित्र अनूपा।
गुरुदेवने अध्यातमीक धर्म निरूपा॥
गुरुदेव अमीइंदुने[1] तिनकी करी टीका।
झरता है निजानंद अमीवृंद सरीका॥ जैवन्त॥ १९॥

चरनानुवेदभेदके निवेदके करता।
गुरुदेव जे भये हैं पापतापके हरता॥
श्रीबट्टकेर देवजी वसुनंदजी चक्री।
निरग्रंथ ग्रंथ पंथके निरग्रंथके शक्री॥ जैवंत०॥ २०॥

योगीन्द्रदेवने रचा परमातमाप्रकाश।
शुभचन्द्रने किया है ज्ञानआरणौ[2]विकाश॥
की पद्मनंदजीने पद्मनंदिपचीसी।
शिवकोटिने आराधनासुसार रचीसी॥ जैवंत०॥२१॥

---

१ अमृतचन्द्रसूरिने। २ ज्ञानार्णवनामका योगप्रदीपग्रंथ।

दोसन्ध तीनसन्ध चारसन्ध पांचसन्ध ।
  षटसन्ध सातसन्धलों गुरू रचा प्रबन्ध ॥
गुरु देवनन्दिने किया जिनेन्द्रव्याकरन ।
  जिस्से हुआ परवादियोंके मानका हरन ॥ जैवन्त० ॥२२॥
गुरुदेवने रची है रुचिर जैनसंहिता ।
  वरनाश्रमादिकी क्रिया कहै है संहिता ॥
वसुनंदि वीरनंदि यशोनन्दि संहिता ।
  इत्यादि बनी हैं दशों परकार संहिता ॥ जैवन्त० ॥२३॥
परमेयकमलमारतंडके हुए कर्ता ।
  माणिक्यनंदि देव नयप्रमाणके भर्ता ॥
जैवंत सिद्धसेन सुगुरु देव दिवाकर ।
  जै वादिसिंह देवसिंह अति यशोधर ॥ जैवन्त० ॥२४॥
श्रीदत्त काणभिक्षु और पात्रकेशरी ।
  श्रीवज्रसूर महासेन श्रीप्रभाकरी ॥
श्रीजटाचार वीरसेन महासेन हैं ।
  जयसेन शिरीपाल गुरु कामधेन हैं ॥ जैवन्त० ॥२५॥
इन [illegible] गुरुने [illegible] ग्रंथ बनाया ।
  [illegible] नाम [illegible] पार ना पाया ॥
जिनसेन गुरुने महापुराण रचा है ।
  [illegible] है ॥ जैवन्त० ॥२६॥

गुणभद्र गुरूने रचा उत्तरपुरानको ।
सो देव सुगुरु देवजी कल्यानथानको ॥
रविसेन गुरुजीने रचा रामका पुरान[1] ।
जो मोहतिमिरभाननेको भानके समान ॥ जैवंत ॥ २७ ॥
पुन्नाटगणविषै हुए जिनसेन दूसरे ।
हरिवंशको बनाके दास आशको भरे ॥
इत्यादि जे वसुवीस सुगुण मूलके धारी ।
निर्ग्रन्थ हुए हैं गुरू जिनग्रंथके कारी, जैवंत ॥ २८ ॥
वंदों तिन्हें जे मुनि हुए, कविकाव्यकरैया ।
वंदामि गमक साधु जो टीकाके धरैया ॥
वादी नमों मुनिवादमें परवाद हरै या ।
गुरु वागमीकको नमों उपदेश भरैया ॥ जैवंत ॥ २९ ॥
ये नाम सुगुरु देवका कल्यान करै है ।
भविवृंदका तत्काल ही दुखद्वंद[2] हरै है ॥
धनधान्य रिद्धि सिद्धि नवो निद्धि भरै है ।
आनंदकंद दे है सबी विघ्न टरै है ॥ जयवन्त ॥ ३० ॥
यह कंठमें धारै जो सुगुरु नामकी माला ।
परतीतसों उरप्रीतिसों ध्यावै जु त्रिकाला ॥
इहलोकका सुख भोग सो सुरलोकमें जावै ।
नरलोकमें फिर आयके निरवानको पावै ॥ जयवन्त ॥

---

१ पद्मपुराण वा रामायण । २ कुष्टरोग ।

जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे।
संसार विषम खारसे जिनभक्त उद्धारे॥ २१॥

इति गुरुस्तुतिः समाप्ता॥ ३॥

---

(४)

अथ संकटमोचन जिनेन्द्रदेवसे अरजी।

दौर।

हो दीनबंधु श्रीपति करुणानिधानजी।
यह मेरी विथा क्यों न हरो बार क्या लगी॥ हो०.टेक॥
मालिक हो दो जहांनके जिनराज आप ही।
ऐसो हुनर हमारा तुमसे छिपा नहीं॥
बेजानमें गुनाह मुझसे बन गया सही॥
ककरीके चोरको कटार मारिये नहीं॥हो दीनबंधु॥ १॥

मुनिराजने निजध्यानमें मन लीन लगाया ।
उस वक्त हो परतच्छ वहाँ जच्छ बचाया॥ हो० ॥१५॥
जिननाथहीको माथ जो नावै था उदारा ।
घेरेमें परा था सो कुलिश कर्ण विचारा॥
उस वक्त तुमें प्रेमसों संकटमें पुकारा ।
रघुवीरने सब पीर तहां तुर्त निकारा॥ हो० ॥ १६ ॥
जब रामने हनुमंतको गढ़ लंक पठाया ।
सीताकी खबर लेनेको सह सैन्य सिधाया ॥
नग बीच दो मुनिराजकी लखि आगमें काया ।
झट वार मूसरधारसों उपसर्ग बचाया॥ हो० ॥ १७ ॥
रनपाल कुंअरके परी थी पांवमें बेरी ।
उस वक्त तुमें ध्यानमें ध्याया था सबेरी ॥
तत्काल ही सुकुमालकी सब झरपरी बेरी ।
तुम राजकुंअरकी सभी दुखदंद निवेरी ॥ हो० ॥ १८ ॥
शिवकोटिने हठ था किया सामंतभद्रसों ।
शिवपिंडिकी बंदन करो शंको अभद्रसों ॥
उस वक्त स्वयंभू रचा गुरु भाव भद्रसों ।
जिनचंदकी प्रतिमा तहाँ प्रगटी सुभद्रसों ॥ हो० ॥ १९ ॥
मुनि मानतुंगको दई जब भूपने पीरा ।
तालेमें किया बंद भरा भूर जंजीरा ॥
मुनि ईशने आदीशकी थुति की है गँभीरा ।
चक्रेश्वरी तब आनिके सब दूर की पीरा ॥ हो० ॥ २० ॥

जब सेठके नंदनको डसा नागने कारा ।
उस वक्त तुमें पीरमें धरि धीर पुकारा ॥
तत्काल ही उस बालका विष भूरि उतारा ।
वह जाग उठा सोके जनों सेज सकारा ॥ हो० ॥ २१ ॥
सूवेने तुमें आनिके फल आम चढ़ाया
मेंडक ले चला फूल भरा भक्तिका भाया ॥
तुम दोनोंको अभिराम सुरगधाम बसाया ।
हम आपसे दातारको लखि आज ही पाया ॥ हो० ॥२२॥
कपि कोल सिंह नेवल अज बैल विचारे ।
तिरजंच जिन्हें रंच न था बोध विचारे ॥
इत्यादिको सुरधाम दे शिवधाममें धारे ।
हम आपसे दातारको प्रभु आज निहारे ॥ हो० ॥ २३ ॥
तुम ही अनंत जंतका भय भीर निवारा ।
वेदो पुरानमें गुरू गणधरने उचारा ॥
हम आपके शरनागतमें आके पुकारा ।
तुम हो प्रतच्छ कल्पवृच्छ ईच्छितकारा ॥ हो० ॥२४॥
प्रभुभक्ति व्यक्त जक्त भुक्त मुक्तिकी दानी ।
आनंदकंद वृंदको है मुक्त निदानी ॥
मोहि दीन जान दीनबंधु पातक भानी ।
दुखसिंधुतै उबार अहो अंतरज्ञानी ॥ हो० ॥ २५ ॥
करुनानिधानवानको अब क्यों न निहारो ।
दानी अनंतदानके दाता हो समारो ॥

वृषचंदनंद वृंदको उपसर्ग निवारो ।
संसारविषमखारतैं प्रभु पार उतारो ॥ हो० ॥ २६ ॥

इति संकटहरणजिनस्तुतिः समाप्ता ॥ ४ ॥

---

(५)

अथ पद्मावतीस्तोत्र लिख्यते ।

जिनशासनी हंसासनी पद्मासनी माता ॥
भुजचारतैं फल चारु दे पद्मावती माता ॥ टेक ॥
जब पार्श्वनाथजीने शुकलध्यान अरंभा ।
कमठेशने उपसर्ग तब किया था अचंभा ॥
निजनाथ सहित आयके सहाय किया है ।
जिननाथ को निजमाथपै चढ़ाय लिया है ॥ जिन० ॥ १ ॥

---

१ आगे अपने इष्टदेव जो श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र तिनको जब कमठके जीवने तप करते महा उपसर्ग प्रारम्भा, तासमय चार प्रकारके जो देवनिके इन्द्र हैं तथा देवी हैं ते सर्व भगवानके दास हैं परन्तु काहूने सहाय नाहिं किया केवल धरणेन्द्र और पद्मावतीजीने सहाय किया धरणेन्द्र तो फण मंडलतैं प्रभुके शीसपर छाया किया और पद्मावतीने स्वामीको अपने मस्तकपर चढ़ाय लिया सर्व उपसर्ग दूर किया सो हमारे इष्ट परमपूज्य की सहाय कीनी इह जानि हमको अति प्रिय लागै है—अद्यापि जहां तहां धर्मकी पक्ष भले करै है और पूर्वाचार्यनिको भी जब परवादीनसों वाद परा है तहां कुछ प्रयोजन धर्मोद्योत करने हेत इनसों स्नेह धर्मानुराग का किया है तो हमको भी प्रिय लागी हैं तातैं बालबुद्धि अनुसार जस कीर्तन करों हों जिनको रुचि होय ते पढियो । (यह वाक्य वृन्दावनजीने स्तोत्रकी आदिमें स्वहस्तसे लिखे हैं ।)

फन तीन सुमनलीन तेरे शीस विराजै ।
जिनराज तहाँ ध्यान धरें आप विराजै ॥
फनिइंदने फनिकी करी जिनंदपै छाया ।
उपसर्ग वर्ग मेटिके आनंद बढ़ाया ॥ जिन० ॥ २ ॥

जिन पासको हुआ तभी केवल सुज्ञान है।
समवादिसरनकी बनी रचना महान है।
प्रभुने दिया धर्मार्थ काम मोक्ष दान है।
तब इन्द्र आदिने किया पूजाविधान है॥ जिन० ॥ ३ ॥

जबसे किया तुम पासके उपसर्गका विनाश ।
तबसे हुआ जस आपका त्रैलोकमें प्रकाश ॥
इन्द्रादिने भि आपके गुनमें किया हुलास ।
किस वास्ते कि इन्द्र खास पासका है दास॥ जिन० ॥४॥

धर्मानुरागरंगसे उमंग भरी हो ।
संध्या समान लाल रंग अंग धरी हो॥
जिन संत शीलवंत पै तुरंत खड़ी हो ।
मनभावती दरसावती आनंद बड़ी हो ॥ जिन० ॥ ५ ॥

जिनधर्मकी प्रभावनाका भाव किया है।
तिन साधने भी आपकी सहाय लिया है ॥
तब आपने उस बातको बनाय दिया है ।
जिस धर्मके निशानको फहराय दिया है॥ जिन० ॥ ६ ॥

था बोधने ताराका किया कुंभमें थापन ।
अकलंकजीसों करते रहे वाद वेहापन ॥

तव आपने सहाय किया धाय मात धन ।
 ताराका हरा मान हुआ बौध उत्थापन ॥ जिन० ॥ ७ ॥
इत्यादि जहां धर्मका विवाद परा है ।
 तहां आपने परवादियोंका मान हरा है ॥
तुमसे ये स्यादवादका निशान खरा है ।
 इस वास्ते हम आपसे अनुराग धरा है ॥ जिन० ॥ ८ ।
तुम शब्दब्रह्मरूप मंत्रमूर्त्तिधरैया ।
 चिन्तामनी समान कामनाकी भरैया ॥
जप जाग जोग जैनकी सब सिद्धि करैया ।
 परवादके परयोगकी तत्काल हरैया ॥ जिन० ॥ ९ ॥
लखि पास तेरे पास शत्रु त्रासतें भाजै ।
 अंकुश निहार दुष्ट जुष्ट दर्पको त्याजै ॥
दुखरूप खर्व गर्वको वह वज्र हरै है ।
 करकंजमें इक कंज सो सुखपुंज भरै है ॥ जिन० ॥ १० ॥
चरणारविंदमें है नूपुरादि आभरन ।
 कटिमें हैं सार मेखला प्रमोदकी करन ॥
उरमें है सुमनमाल सुमनमालकी माला ।
 पटरंग अंग संगसों सोहै है विशाला ॥ जिन० ॥ ११ ॥
करकंज चारुभूषनसों भूरि भरा है ।
 भवि वृंदको आनन्दकंद पूरि करा है ॥
जुग भान कान कुंडलसों जोति धरा है ।
 शिर शीसफूल फूलसों अतूल धरा है ॥ जिन० ॥ १२ ॥

मुखचंदको अमंद देख चंद हू थंभा।
छबि हेर हार हो रहा रंभाको अचंभा॥
दृगतीन सहित लाल तिलक भाल धरै है।
विकसित मुखारविंदसों आनंद भरै है॥ जिन० ॥ १३ ॥
जो आपको त्रिकाल लाल चालसों ध्यावै।
विकराल भूमिपाल उसे भाल झुकावै॥
जो प्रीतसों परतीतरूप रीत बढावै।
सो रिद्धि सिद्धि वृद्धि नवों निद्धिको पावै॥ जिन० ॥ १४ ॥
जो दीपदानके विधानसे तुम्हें जपै।
सो पायके निधान तेजपुंजसो दिपै॥
जो भेद मंत्रवेदमें निवेद किया है।
सो बाधके उपाध सिद्ध साध लिया है॥ जिन० ॥ १५ ॥
धनधान्यका अर्थी है सो धनधान्यको पावै।
संतानका अर्थी है सो संतान खिलावै॥
निजराजका अर्थी है सो फिर राज लहावै।
पदभ्रष्ट सुपद पायके मनमोद बढ़ावै॥ जिन० ॥ १६ ॥
ग्रह क्रूर व्यंतराल व्याल जाल पूतना।
तुव नामकी सुनि हाँक सौ भागै हैं भूतना॥
कफ वात पित्त रक्त रोग शोग शाकिनी।
तुम नामतै डरी मरी परात डाकिनी॥ जिन० ॥ १७ ॥
भयभीतकी हरनी है तुही मातु भवानी।
उपसर्ग दुर्ग द्रावती दुर्गावती रानी॥

तुम संकटा समस्तकष्टकाटिनी दानी ।
सुखसारकी करनी तु शंकरीश महानी ॥ जिन० ॥ १८ ॥
इस वक्तमें जिनभक्तको दुख व्यक्त सतावै ।
ऐ मात तुझे देखिके क्या दर्द ना आवै ॥
सब दिनसे तो करती रही जिनभक्तपै छाया ।
किस वास्ते उस बातको ऐ मात भुलाया ॥ जिन० ॥१९॥
हो मात मेरे सर्व ही अपराध छिमाकर ।
होता नहीं क्या बालसे कुचाल इहां पर ॥
कुपुत्र तो होते हैं जगतमांहिं सरासर ।
माता न तजे तिनसों कभी नेह जन्मभर ॥जिन० ॥२०॥
अब मात मेरी बातको सब भाँत सुधारो ।
मनकामनाको सिद्ध करो विघ्न विदारो ॥
मति देर करो मेरी ओर नेक निहारो ।
करकंजकी छाया करो दुखदंद निवारो ॥जिन० ॥ २१ ॥
ब्रह्मंडनी सुखमंडनी खलखंडनी ख्याता ।
दुख टारिके परिवार सहित दे मुझे साता ॥
तजके विलंब अंब जी अवलंब दीजिये ।
वृषचंदनंद वृंदको अनंद दीजिये ॥ जिन० ॥ २२ ॥
जिनधर्मसे डिगनेका कहीं आ पड़े कारन ।
तो लीजियो उवार मुझे भक्ति उधारन ॥
निजकर्मके संजोगसे जिस जोनमें जावों ।
तहां दीजिये सम्यक्त जो शिवधामको पावों ॥ जिन० ॥

हंसासनी जिनशासनी पद्मासनी माता ।
भुज चारतैं फल चारु दे पद्मावती माता ॥ २३ ॥

इति पद्मावतीस्तोत्र सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

---

(६)

अथ भक्तभयभंजन कल्याणकल्पद्रुम जिनेन्द्रस्तुति लिख्यते ।

छन्द मत्तगयन्द ।

भूप अकंपनकी तनया जसु, नाम सुलोचना वेद उचारी ।
सो जयसंजुत जात चढ़ी, गज ग्राह गह्यो जब गंग मझारी ॥
ध्यावत पादसरोरुहको, करुणा करके तिहिं वार उबारी ।
क्यों न सुनो जनकी विनती, जनआरतभंजन हे सुखकारी ॥१॥
पावककुंड प्रचंड भयो, ब्रह्मंड उमंडि रही जब ज्वाला ।
रामकी वाम सिया अभिराम, उठी तब ही जपि नामकी माला ॥
वारिजपॉय पधारत ही, तिहिं वार कियो सर स्वच्छ विशाला
क्यों न सुनो जनकी विनती, जन-आरत-भंजन दीनदयाल ॥२॥
शीलवती सुविशुद्धमती वर, चक्रवती हरिपेनकी माता ।
सौतने ताहि दियो जब संकट, चालि है मो रथ ब्रह्म विधाता ॥
कीन्ह सहाय ततच्छन राय, चलाय दियो रथ जैन विख्याता ।
आज विलंबको कारन कौन है? हे प्रणतारतभंजन ताता ॥३॥

---

१ प्रणत पुरुषोंके दुःखको नाश करनेवाले ।

श्री पवनंजयकी वनिताकहँ, सासु कलंक लगाय निकारी।
जाय बसी वन संयुतगर्भे[1], भयो उपसर्ग तहाँ अति भारी॥
नाम अराधत ही तब ही, शेरभाकृत[2] देव कलेश निवारी।
क्यों न सुनो जनकी विनती, जनआरतभंजन हे त्रिपुरारी॥४॥
द्रोपदि चीर दुशासन खैंचत, मध्यसभामहँ लाज न आई।
भीषम कर्ण जुधिष्ठिर देखत, पारथसों न कछू बनि आई॥
धारिके धीर पुकारत ही, तिहिं औसर चीर विशाल बढ़ाई।
क्यों न सुनो जनकी विनती, जनआरतभंजन हे जदुराई॥५॥
सम्यकशीलविभूषनभूषित, सोमा सती रतितै अति रूपा।
कुंभतै नाग निकासनको, पति तासों कह्यो जु सुशीलअनूपा॥
सो जपि नाम निकासत दाम[3], भयो अभिराम प्रसूनसरूपा।
आज विलंबको कारन कौन है, दीनदयाल त्रिलोकके भूपा॥६॥
श्रीत्रिशला जिनकी जननी, तिनकी भगिनी लघु चंदना हेरी।
सम्यकशील सुरूपनिधानके, संकटमाहिं परी पग वेरी॥
वीर जिनेश गये तहँ आप, कटी दुखफंद रटी सुर भेरी।
मैं अति आतुर टेरतु हौं, अब श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥७॥
यानविषैं सिरिपालि तिया लखि, सेठ कुवुद्धि धरी जिहँ वेरी।
शीलविनाशनको शठ सो, हठ कीन मलीन उपाय घनेरी॥
नारि पुकार सुनी मँझधार, उवार लियो दुखदंद निवेरी।
मै शरनागत आनि पर्‍यो, अब श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥८॥

---

१ गर्भसहित-गर्भवती। २ सिंहकृत। ३ माला।

शीलविभूषित सिंहिकाको, जब ही नघुशेष कलेश दियेरी ।
छीन लियो पटरानियको पद, भूप भये ज्वरग्रस्त तबेरी ॥
ध्याय तुम्हें जल दीन्हों लगाय, तुरंत तबै नृपताप टरेरी ।
क्यों न हरो हमरी यह आपति, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी ॥९॥
द्रोपदी शीलसुरूपनिधानको, धातुकि भूपतिने जब हेरी ।
मंत्र अराधि उपाधि कियो हरि, लेय गयो दुख दैन लगेरी ॥
नाम अराधत ही तब ही हरि, जाय समस्त कलेश निवेरी ।
क्यों न हरो हमरी यह आपति, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी १०
झूठ कलंक लगाय सतीकहँ, राय गिराय दियो पदसेरी ।
फाटक बंद भयो पुरको न, खुलै तहँ कोटि उपाय कियेरी ॥
ध्याय तुम्हें जल चालनिमें भरि, सीच्यो सती तब द्वार खुलेरी ।
क्यों न सुनो हमरी विनती अब, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥ ११
आदिकुमार भये अनगार, अपार महाव्रतभार भरेरी ।
याचत राज नमी विनमी जहँ, आप विराजत मौन धरेरी ॥
आप दियो धरनेंद्र तिन्हें, रजताचल राज उभैदिशिकेरी।
मैं प्रभुको तजि जाऊं कहाँ? अब श्रीपतिजी पतराखहु मेरी १२
आगविषै जुगनाग जरंत, विलोकि तुरंत तिन्हें तिहिं बेरी ।
पास कुमार दियो नवकार, उबार दियो दुख दुर्गतिसेरी ॥
सो तत्काल भये धरनेश्वर. औ पदमावति पुण्य भरेरी ।
मैं प्रभुकों तज जाऊं कहां अब, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥ १३
सेठसुदर्शन आनंदवर्षन. सम्यकसर्पन कर्पन कामा ।
ताहि तियावश भूप लगाय. कलंक निशंक जो शील ललामा॥

शूली चढ़ावत ध्यावत ही तिहिं, दीन्हों सिंहासन श्रीअभिरामा।
आज विलंबको कारन कौन है, आरतभंजन कीरतिधामा १४
श्रीमिथिलेशतिया जब ही, सुकुमार जनी सियसंयुत हेरी ।
पूरब वैर विचार ह्र्यो सुर, फेरि दया उपजी तिहँ बेरी ॥
भूषनभूषि दियो पधराय, सो राय भयो रजताचल केरी ।
हों सरनागत आनि पर्‍यो अब, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी १५
कौशलके पति रामकी वाम, हरी दशकंध कुबुद्ध धरेरी ।
होत भयो रन संकटमें, सुमिर्‍यो बलिने प्रभुको तिहिं बेरी ॥
देव सुलोचन दीन्ह तिन्हें हरि, गारुड़वाहन शस्त्रघनेरी ।
क्यों न हरो हमरी यह आपति, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥१६॥
राम तिया हरिके जब ही, नभमें दशकन्धर जान लगेरी ।
गृद्ध जटायुसों जुद्ध भयो, तलघाततें पात भयो तिहिं बेरी ॥
रामने ताहि दियो तुम नाम, लियो सुरधाम सो पुण्य भरेरी।
मै अति आतुर टेरतु हों अब, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥१७॥
जानकिकों हरिके दशकंधर, लंकविषैं जब जाय धरेरी ।
त्याग चतुर्विधि भोजन सो, जिननाम जप्यो करुनाकरकेरी ॥
श्री हनुमंत सहाय करी तुव, धर्मप्रसाद कलेश हरेरी ।
क्यों न हरो हमरी यह आपति, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी १८

माधवी ।

नृप वज्र सुकर्ण पुनीत अचर्ण, करी यह पर्ण सुनी गुरु गाथा।
जिननाथ तथा मुनिसाथ जथारथ, गाथ विना न नवै मम माथा॥

तिहपै जब संकट आनि पर्यो, तहँ जाय सहाय भये रघुनाथा।
अब मो दुख देख द्रवो करुणानिधि, राखहु लाज गहो मम हाथा १९

मत्तगयन्द।

म्लेच्छनिको पति कोपित व्है करि, आनि जबै महिमंडल घेरी।
बाँध लियो नृप बालिसुखिल्यको, डारि दियो पगमें भरि बेरी॥
श्रीरघुनाथ सनाथ भये, भय भंजि उबार लियो तिहँ बेरी।
मो दुख देख द्रवो अब नाथ, गहो मम हाथ करो मत देरी॥२०॥
शेठ महामति जेठ तिन्हें जब, दारिद हेठ कियो दुख देरी।
सो तुम नाम जप्यो अभिराम, जो कामदधाम महामुनि टेरी॥
दारिद दूर कियो तिनके घर, पूर दई तब ऋद्धि घनेरी।
क्यों न द्रवो लखि मो दुख दीरघ, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥२१
श्री वसुदेवतिया सुखिया, त्रय युग्म जनी सुतको जिहँ बेरी।
कंस विधंसनको तिनको, करि कोप शिलापर पाँय गहेरी॥
शासन देव उबार लियौ, ततकाल तहाँ न लगी कछु देरी।
क्यों न द्रवो लखि मो दुख दीरघ, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥२२
कृष्णकुमार प्रदुम्न उदार, महासुकुमार जये जिहिं बेरी।
बैर विचारि हर्यो तब ही, सुर दीन्ह शिलातर डार बड़ेरी॥
लीन्हों उबार तिन्हें तिहिं बार, दयाधनधार न बार लगेरी।
आज विलंबको कारन कौन है, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥२३॥
चर्मशरीर श्रीपाल नरेसुरकों, जब कोढ़ महा गद घेरी।
मैना सती तिनकी वनिता, तुम भक्तिविषैं अनुराग घनेरी॥
ध्याय लगाय दियो चरनोदक, कंचन काय करी तिहिं बेरी॥
हो जन रंजन आरत भंजन, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥२४॥

सागरमध्य परे शिरिपाल, कुचाल करी जब शेठ तबेरी।
पावन नाम जप्यो अभिराम, जो तारतु है भवसिंधु सबेरी॥
ताहि उबार लियो सुखकार, सो राज कियो फिर मुक्ति वरेरी।
आज विलंबको कारन कौन है, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥२५॥
शेठ सुबुद्ध श्रीधन्नाविशुद्धकों, पापिन वापीविषै जब गेरी।
नाम अधार रह्यो तिहिं बार, पुकारत आरत तासु निवेरी॥
वेद उचारत आरत भंजन, वत्सल लच्छन है प्रभु तेरी।
आज विलंबको कारन कौन है, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी२६
श्रीश्रुतसागर ज्ञान उजागर, सागरसों गुनरत्न भरेरी।
हारि गयो तिनसों वलि वादमें, मारनको निशि शस्त्र गहेरी॥
शासन जक्षप्रतक्ष तहाँ, मुनिरक्षक ह्वै उपसर्ग निवेरी।
क्यों न हरो हमरी यह आपति, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥२७
श्रीजिनवीर विराजे जबै, विपुलाचलपै सुनिके सुरभेरी।
मींडक[1] जात लिये जलजात[2], प्रफुल्लितगात सुभक्ति धरेरी॥
दंतिपतैं मरते तुरिते तिहिं, कीन्हों प्रभा सुर देव बड़ेरी।
मो दुख देख द्रवौ किन साहिब, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥२८॥
वानर जात पशू अवदात, विख्यातको वान लग्यो जिहि वेरी।
देख दुखी तिहिं श्रीगुरुदेव, सुनाय दियो नवकार तबेरी॥
होत भयो ततकाल महोदधि, देव महाबल रिद्धि धरेरी।
मोपर क्यों न करो करुणा, अब श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥२९॥
आम चढ़ाय सुआ सुख पाय, भयो सुर जाय विमान चढ़ेरी।

१ मेंडक। २ कमल।

जो तुमको धरि नेह जजै, भवि दर्वित भावित भक्त भरेरी॥
देत तिन्है अविनश्वर आनँद, हो तुम दीनदयाल वड़ेरी।
मोहि न है अवलंवन दूसरो. श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥३०॥

श्रीयुतस्वामि समन्तसुभद्रसों, भूप कियो हठ वंदनकेरी।
श्रीगुरु पाठ स्वयंभू रच्यो, पद गर्वित स्यादरु वाद घनेरी॥
शंभुकी पिंडिका फोरि फुरी, दुति चन्द जिनंद सुवंदि तवेरी।
मोहि नहीं अवलंव है दूसरो, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥३१॥

श्रीकुमुदेन्दु महा गुनवृंद, मुनिंदसों वाद पऱ्यो जिहिं वेरी।
आनँदमंदिर पाठ रच्यो गुरु, भक्ति भरी वहु जुक्ति धरेरी॥
शासन जच्छ प्रतच्छ तहाँ, प्रगटी प्रतिमा प्रभु पास तवेरी।
मोपर वेग करो करुना अव, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥३२॥

श्रीमत मानसुतुंग मुनिंदको, भूपति वंद कियो भरि वेरी।
श्री भगतामर पाठ रच्यो तहँ, आनि चक्रेश्वरी मोद धरेरी॥
वंधन काट दियो ततकार, भयो जयकार वजी सुरभेरी।
मोहि नहीं अवलंव है दूसरो, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥३३॥

मंगलमूरत श्रीगुरु वादि,-सुराजकों कोढ भयो जिहिं वेरी।
सो तुमसों चित लाय कियो, थुति नामसु एकियभाव धरेरी॥
होय सहाय ततच्छिन ही, तन कीन सुवर्ण लगी नहिं देरी।
मोहि पुकारत वार भई अव, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥३४

शेठके नंदनको जव ही, अहि जान डस्यो विष भूरि चढ़ेरी।
औषध मंत्र उपाय तजी, धरि धीर तुम्हें वह पीर टरेरी॥

निर्विष तासु कियो तहँ बालक, जागि उठ्यो जनु सेज सवेरी।
मोहि पुकारत बार भई अब, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥३५॥
अंजन चोर महामति घोरपै, कीन्हों कृपा करुनाकर नामी।
तार्‍यो तुरंत अहो भगवंत, बखानत संत सुधारस नामी॥
और अनेक अपावनकों, गति पावन दीन्हीं जिनेश्वर स्वामी।
क्यों न हरो हमरो दुखदीरघ, हे जिनकुंजर अंतरजामी॥३६॥
कूकर शूकर बानर नाहर, नेवर आदि पशू अविचारी।
दीन्हों तिन्हें सुरधाम दयानिधि, वेद पुराननमाहिं पुकारी॥
मै अति दीन अधीन भयो, तुमसों यह टेरतु हों त्रिपुरारी।
त्याग विलंब करो करुनाअब, श्रीपतिजी पत राखो हमारी॥३७॥
हो करुनाकर हो कमलावर, हो जिनकुंजर अंतरजामी।
दासनके दुख देखत ही तुम, कीन्हीं सहाय दयानिधि नामी॥
मोपर पीर अपार परी, सो निहारत हो कि नहीं अभिरामी।
लीजे उवार हमें इहि बार, अहो सुखकार जिनेश्वर स्वामी॥३८
दारिदकंदलि-काननको तुम, कुंजर हो जिन कुंजरगामी।
विघ्नदवानलको वरवारिद, हो सुख शारद अंतरजामी॥
सेवकके कलपद्रुम हो, सरवारथसिद्धिप्रदायक नामी।
मोपर पीर अपार निहार, द्रवौ अब हे वृषभेश्वर स्वामी॥ ३९॥
दूषण दोषि अवर्ण निवर्णि, विवर्ण विवर्णित वस्तुविधाना।
ग्रंथनिग्रंथनिग्रंथपती, निरग्रन्थयती नितधारत ध्याना॥
विघ्न विनिघ्न कियौ तिहिंतें, पदपद्मवसी शिवपद्म सुजाना।
हो सर्वज्ञ दयानिधि तज्ञ, द्रवौ मुझ अज्ञपै हे भगवाना॥ ४०॥

जो तुम हो तिहुँ लोकके नायक, क्षायक दानपती जगनामी ।
तो किन मोहि दुखी अवलोकि, द्रवौ करुणाकर कीरतधामी ॥
दानी कहाइवो औ कृपनापन, दोऊ बनै किमि हे अभिरामी।
देखि अनाथ द्रवौ अब नाथ, गहो मम हाथ हे श्रीपति स्वामी ॥४१
द्वादश अंग उपंगविषै, यह बात अभंग प्रकाश रही है ।
दान अनंतके दाता तुमी, इह नातातै मै पद आनि गही है॥
भौदुखसिंधु अगाधविषै, अब डूबत हौं कहुँ थाह नहीं है ।
लीजे उबार हमें इह बार, अधार तुमीसों पुकार कही है ४२
कर्मकलंक विनाशत ही, प्रगटी अविनश्वर रिद्धि तुमे री ।
जानत हो सब लोक अलोकको, केवलबोध अगाध धरे री ॥
विघ्नविनाशन उन्नतशासन, शासनमाहिं महामुनि टेरी ।
मै यह जानि गही शरनागत, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी४३
आरतवंत पुकारत ही सुनि, ग्रामपती दुख देत निवेरी ।
आप प्रसिद्ध त्रिलोकपती, सब जानत बात चराचर केरी ॥
जो दुख देखि द्रवोगे नहीं, तो दयानिधि बान कहाँ निवहे री।
मोहि नहीं अवलंब है दूसरो, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥४४
लोक अलोक विलोकत हो, दृग केवल शुद्ध प्रकाश धरे री।
नाहिं छिपी प्रभु जी तुमसों, अपराध बनी कछु जो हमसे री॥
हो तुम पूरन दीनदयाल, द्रवौ किन मोपर पीर परे री ।
लेहु उबारि हमें इह बार, हो श्रीपतिजी पत राखहु मेरी ४५
पुण्यप्रकाशन पापप्रनाशन, उन्नत शासन वेद भने री ।
है कमलासन पै कमलासन, दासनिके दुखदंद हरे री ॥

दान अनंतके दाता तुम्हें सुनि, जांचत हों न करो अब देरी ।
होय अधीन करूं विनती, अब श्रीपतिजी पत राखहु मेरी ४६
हो जिन दीन अधीनकी वीनती, कौन सुनै करुनाकरकेरी ।
वेद पुकारत है तुमको, दुरितारि हरी सुखसिंधु भरे री ॥
दासनके दुखभंजनकी, जग फैलि रही विरदावलि तेरी ।
याहीतै मै यह जांचत हों अब,-श्रीपतिजी पत राखहु मेरी ४७
मो पर पीर परी प्रभुजी, अब लोको तुम्है करुनाकर टेरी ।
हो तुम छायक ज्ञानपती, सबलायक दीनदयाल बड़ेरी ॥
दासनिके कल्पद्रुम हो, चितचिंतितदायक ऋद्धिघनेरी ।
याही तैं मै पद सेवत हौं, अब श्रीपतिजी पत राखहु मेरी४८
जो कछु चूक परी हमसों, उदयागतचारितमोह पिरे री ।
सो तुम जानत हो करुणानिधि, केवलबोध अगाध धरे री ॥
यातै यही विनवों कर जोरि, छिमा करिये अघ औगुन मेरी ।
जाउं कहाँ तजिकै पदपंकज, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥४९॥
हे प्रभु भूल भई हमसों यह, चारित मोह दई मति केरी ।
भूपति मो प्रति कोपित है, अति शासति कीन्ह न जात कहेरी॥
आज लों आपसों जाँची नहीं, मति राची नहीं तुम भक्ति विषैरी ।
टेरत हों अति आतुर है अब, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी ॥५०॥
कोटिक जन्मनिके अघ संचित. देत मिटाय लगै नहिं देरी ।
द्वादश अंग उपंगविषैं, निरधार गुरू गनधारन टेरी ॥
है जस उज्वल लोकविषै. निजदासनिके कल्पद्रुम केरी ।
याहीतैं मै अब जांचत हौं, अब श्रीपतिजी पत राखहु मेरी॥५१॥

हों सब ही विधि दीन अधीन, पुकारत हौ प्रभुसों कर जोरी।
जानत हो सब लक्ष प्रतक्ष, तबै किमि दक्ष विलंब करो री ॥
मै तुमको तजि जाउं कहाँ, अब तो शरनागत आन परोरी।
लेहु उबार हमें इह बार, न लावहु बार हरो दुख मोरी॥५२॥

संचित जन्म अनेकनिके अघ, ईंधनको तुम पावकज्वाला।
पारस औ कल्पद्रुमसों जो, मिले नहिं सो तुम देत विशाला॥
दासनके दुखभंजनकी, श्रुत गावत कीरतिरासरसाला।
हों प्रभुको तजि जाउं कहाँ, जो रुचै सो करो तुम दीनदयाला ५३

हों शठ पापिनमें परधान, महा अघ औगुन खान भरोरी।
तारो तुम्ही अघवंतनिको, सुनि यातै गही शरनागत तोरी॥
छायक ऋद्धिके दायक हो, जिननायक जी मम आश भरोरी।
जाउं कहाँ तजिकै पदपंकज, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी ॥ ५४ ॥

रोग महोरगके विनतासुत[1], दारिद-कुंजर-केहरि नामी।
संकट कानन भाननको, हो कृशानु[2] प्रधान जिनेश्वरस्वामी॥
विघ्नमहातमको तरिनीपति[3], हो तुम श्रीपति कीरतिधामी।
भो जिननाथ गहो मम हाथ, निरंतर द्यो सुख अंतरजामी॥५५॥

छन्द किरीट तथा माधवी।

सब लोकविषै यह काल बली, कवलीकरतार महामद धारी।
प्रभु ताहि विजै करि आप विराजत, हौ पदसिद्धविषै अविकारी॥
जिनके तुमरी शरनागत है, जन ते उबरें भयभीति निवारी।
अब मैं यह जानि गही पदपंकज, श्रीपतिजी सुधि लेहु हमारी५६

१ वैनतेय गरुड़। २ अग्नि। ३ सूर्य।

निजदासनके दुख देखत ही, प्रभु लीन्हों उबारि तिन्हें तिहिंबेरी।
लघु दीरघ पाप कछू न गिन्यो, करुना करि काटि दियो दुख बेरी
हमपै यह पीर अपार परी, निरधार पुकारत हों इहि बेरी।
प्रभु डूबत हों दुखसागरमें, किन श्रीपतिजी पत राखहु मेरी५७
जगजंत अनंत उधारत हौ, जसगावत है श्रुत संशय नाहीं।
अपराधि उपाधि विनाशनकी, विरदावलि फैलि रही जगमाहीं॥
अब मो पत जात अहो करुनापति, आतुर हेरत हों तुमपाहीं।
तजि बार अबार कृपानिधि हो, मोहि लेहु उबार गहो गलबांही
हमसों अघऔगुन भूलि बनी सो, त्रिलोकधनी तुम जानत सारी।
अब तास विनाशनकों तुमसों, अति आतुर आरत आनि पुकारीं।
सब लायक हो जिननायकजू, अपनों लखि मोकहँ लेहु उबारी।
शरनागतकी प्रभु राखहु लाज, अहो करुनाकर कीरतधारी ५९
सुनिये विनती शिवधामधनी, वसुजाम तुमी फल काम प्रदाता।
हमसों कछु जो अपराध वन्यौ, सव सो तुम जानत हो जगताता
नहिं सम्मुख मो मुख होय सकै, हो कृपानिधि दीनदयाल विधाता
अब राखहु लाज अहो महाराज, हरो दुखसंकट हो सुखदाता६०

दोहा।

विघ्न निघ्नकरतार हो, हो जिन जगदाधार।
डूबत हों दुखउदधिमें, लीजे वेगि उवार॥ ६१॥
किहिं विधि प्रभुकी थुति करों, बुधि थोरी गुनभूर।
सोऊ वानीगम्य नहिं, सहजानंद भरपूर॥ ६२॥
एक अलंब यहै अहै, तुम जानत सब वस्त।

दयादान सर्वज्ञता, प्रभुमें है परशस्त ॥ ६३ ॥
तातै मो दिशि देखि अब, कृपा करो जिनचंद ।
निरावाध सुख दीजिये, सहज निजानंद कंद ॥६४॥
दीनबंधु करुणायतन, तारनतरन जिनेश ।
वृंदावन विनती करत, मैटो सकल कलेश ॥६५॥

इति सकटोद्धरणस्तुतिः ।

---

(७)

अथ अरहंतस्तुतिर्लिख्यते ।

दोहा ।

जासु धर्मपरभावसों, संकट कटत अनन्त ।
मंगलमूरति देव सो, जैवन्तो अरहन्त ॥ १ ॥
हे करुनानिधि सुजनको, कष्टविषै लखि लेत ।
तजि विलंब दुख नष्ट किय, अब विलंब किह हेत ॥ २ ॥

षट्पद ।

तव विलंब नहिं कियो, दियो नमिको रजताचल ।
तव विलंब नहिं कियो, मेघवाहन लंका थल ॥
तव विलंब नहिं कियो, शेठ सुत दारिद भंजे ।
तव विलंब नहिं कियो, नाग जुग सुरपद रंजे ॥
इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन ।
प्रभु मोर दुःखनाशन विषै, अब विलंब कारन कवन ॥ ३ ॥

तब विलंब नहिं कियो, सिया पावक जल कीन्हौ।
तब विलंब नहिं कियो, चंदना शृंखल छीन्हौ॥
तब विलंब नहि कियो, चीर द्रुपदीको बाढ्यो।
तब विलंब नहिं कियो, सुलोचन गंगा काढ्यो॥
इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतिय रवन।
प्रभु मोर दुःखनाशनविषै, अब बिलंब कारन कवन॥ ४॥
तब विलंब नहिं कियो, साँप किय कुसुम सुमाला॥
तब विलंब नहिं कियो, उरविला सुरथ निकाला॥
तब विलंब नहिं कियो, शीलबल फाटक खुल्ले।
तब विलंब नहिं कियो, अंजना वन मन फुल्ले॥
इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतिय रवन।
प्रभु मोर दुःख नाशन विषै, अब विलंब कारण कवन॥ ५॥
तब विलंब नहिं कियो, शेठ सिंहासन दीन्हौ।
तब विलंब नहिं कियो, सिंधु श्रीपाल कढ़ीन्हौ॥
तब विलंब नहिं कियो, प्रतिज्ञा वज्रकर्ण पल।
तब विलंब नहिं कियो, सुधन्ना काढ़ि वापि थल॥
इम चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतिय रवन।
प्रभु मोर दुःखनाशनविषै, अब विलंब कारन कवन॥ ६॥
तब विलंब नहिं कियो, कंश भय त्रिजुग उबारे।
तब विलंब नहिं कियो, कृष्णसुत शिला उतारे॥
तब विलंब नहिं कियो, खड्ग मुनिराज बचायो।
तब विलंब नहिं कियो, नीरमातंग उचायो॥

इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन।
प्रभु मोर दुःखनाशनविषैं, अब विलंब कारन कवन ॥७॥
तब विलंब नहिं कियो, शेठसुत निरविष कीन्हौं।
तब विलंब नहिं कियो, मानतुँग बंध हरीन्हौ ॥
तब विलंब नहिं कियो, वादि मुनि कोढ़ मिटायो।
तब विलंब नहिं कियो, कुमुद जिनपास मिटायो ॥
इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन।
प्रभु मोर दुःखनाशनविषै, अब विलंब कारन कवन ॥ ८ ॥
तब विलंब नहिं कियो, अंजना चोर उवारे।
तब विलंब नहिं कियो, पूरवा भील सुधारे ॥
तब विलंब नहिं कियो, गृद्धपक्षी सुंदर तन।
तब विलंब नहिं कियो, भेक दिय सुरअद्भुतधन ॥
कपि श्वान सिंह जंबुक नकुल, वृषभ शूर मृग अज भवन।
इत्यादि पतित पावन किये, अब विलंब कारन कवन॥९॥
इहविधि दुख निरवार, सार सुख प्रापति कीन्हौ।
अपनो दास निहारि, भक्तवत्सल गुन चीन्हौ ॥
अब विलंब किंहिं हेत, कृपाकर इहां लगाई।
कहा सुनो अरदास नाहिं, त्रिभुवनके राई ॥
जन वृंद सुमनवचतन अबै, गही नाथ तुम पदशरन।
सुधि ले दयाल मम हालपै, कर मंगल मंगलकरन ॥ १० ॥

इति अरहन्तस्तुतिः।

(८)

अथ आरतभंजनस्तोत्र।

मत्तगयन्द।

आप अमूरत हो चिनमूरत, जोग अतीत जगोत्तमधामी।
यातै नहीं पहुँचै श्रुति आपलों, पै सब जानत अंतरजामी॥
नौ विधि केवल लाभ लिये, तुम हो मनबांछितदायक नामी।
मोपर पीर अपार विलोकि, द्रवौ अब हे वृषभेश्वर स्वामी॥१॥
संकट पावक कुंड प्रचंडतै, क्यों न निकाशत हो जिनस्वामी।
पंचमकाल करालकी चाल, लगी तुमहूकहँ क्या जगनामी॥
दास दुखी अवलोकत हो तब, काहे विलंब करो अभिरामी।
आरतभंजन नामकी ओर, निहार उधारहु अंतरजामी॥२॥

माधवी।

जब सेवककी बिगरी तबही तहँ, साहब लीन तुरंत सुधारी।
यह बात सनातनसों चलि आवत, गावत वेद पुरान पुरारी॥
तब कौन प्रकार पुकार सुनी, अब कारन कौन विलंब लगारी।
नहिं मोहि अलंबन है कोउ दूसरो, श्रीपतिजी सुधि लेहु हमारी ३

---

(९)

अथ गुरुदेवस्तुतिः।

कवित्त ३१ मात्रा।

संघसहित श्रीकुंदकुंद गुरु, वंदन हेत गिरौ गिरनार।
वाद परचो तहँ संशयमतिसों, साक्षी बदीं अंबिकाकार॥

"सत्यपंथ निरग्रंथ दिगम्बर", कही सुरी तहँ प्रगट पुकार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघ्नहरन मंगलकरतार ॥ १ ॥
स्वामि समंतभद्र मुनिवरसों, शिवकोटी हठ कियो अपार।
वंदन करो शंभुपिंडीको, तब गुरु रच्यो स्वयंभू भार ॥
वंदन करत पिंडिका फाटी, प्रगट भये जिनचंद उदार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघ्नहरन मंगलकरतार ॥ २ ॥
श्रीमत मानतुंग मुनिवरपर, भूप कोप जब कियो गँवार।
बंद कियो तालेमें तब ही, भक्तामर गुरु रच्यो उदार ॥
चक्रेश्वरी प्रगट तब ह्वैकै, बंधन काट कियो जयकार।
सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघ्नहरन मंगल करतार ॥ ३ ॥
श्रीअकलंकदेव मुनिवरसों, वाद रच्यो जहँ बौद्ध विचार।
तारादेवी घटमहँ थापी, पटके ओट करत उच्चार ॥
जीत्यो स्यादवादबल मुनिवर, बौद्ध वेधि तारामद टार।
सो गुरुदेव वशो उरअंतर, विघ्नहरन मंगलकरतार ॥ ४ ॥

---

(१०)

अथ श्रीपतिस्तुतिः।

दुमिला तथा द्वितोटक।

जस गावत शारद शेष खरो, अघवंत उधारनको तुमरो।
तिहिंतें शरनागत आन परो, विरदावलिकी कछु लाज धरो॥
दुखवारिधतें प्रभु पार करो, दुरितारि हरो सुखसिंधु भरो।
सब क्लेश अशेष हरो हमरो, अब देख दुखी मत देर करो१॥

तुमतें कछु हे जिनराज गनी, नहिं दुर्लभ ऋद्धि सुसिद्धि घनी।
सुरईश तथा नरईशतनी, भुवि पावत आनँद वृंद बनी॥
अब मो दिशि देख दया करनी, अपनी विरदावलिपालि तनी।
इहि वार पुकार सुनो इतनी, तजि वार उबार त्रिलोक धनी२
अभिअंतरश्री चतुरंतरश्री, बहिरंतरश्री समवस्रतश्री।
यह श्रीपतिश्री अतिही पतिश्री, मनुजासुरश्री लखि लाजत श्री॥
पदपंकजश्री मुनिध्यावतश्री, श्रुतशारदश्री यशगावत श्री।
अब मो उर श्रीपति राजहु श्री, चितचिंतितश्री सुखसाजहु श्री३

---

(११)

अथ लोकोक्तियुक्त-जिनेन्द्रस्तुतिः।

कवित्त छन्द।

हे शिवतियवर जिनवर तुम पद,-पंकजमहँ कमलाको वास।
विघनविनायक सब सुखदायक, विशद सुजस अस रह्यो प्रकाश॥
सो पद सुधासरोवर तजि जो, चाहत हरन ओस जलप्यास।
तास आश अनयास अफल "ज्यों, दंडा ले कूटै आकाश"॥१॥
दुखटारन सुखकारन प्रभुसों, प्रीति न करै हिये हित चाह।
भ्रामिक भाव विवश निशिवासर, भजै कुदेव कुग्रंथकुराह॥
बोय बँबूल शूल तरुसों शठ, आमचखनकी राखत चाह।
ताकी आश अफल यों जानो, "जैसे बांझपूतको ब्याह"॥२
जनरंजन अघभंजन प्रभुपद,-कंजन करत रमा नित केल।
चिन्तामन कल्पद्रुम पारस, बसत जहाँ सुर चित्रावेल॥

सो पदत्यागि मूढ़ निशिवासर, सुखहित करत कृपा अनमेल ।
नीतिनिपुन यों कहै ताहि वर, 'बालू पेलि निकालै तेल' ॥३॥
मोह विवश मम मति अति श्रीपति, मलिन भई गतिअगति न विद्ध
तातें भूलि बन्यो यह कारज, हे आरज आचारज वृद्ध ॥
तासु उदै दुख दुसह सह्यो अब, आयौ शरन पुकारि प्रसिद्ध।
राखहु लाज जानि जन अपनों, "गरे परै सो बजाये सिद्ध" ४
जानत हौ अघ औगुनको फल, प्रगट दुखद यह प्रगट दिखाय ।
तौ भी बरवश जाय झुकत मन, मानत नाहिं शीव सुखदाय॥
विना तुमारी कृपा कृपानिधि, मिटै न यह हठ आन उपाय ।
वक्र चक्रगत तजत न अंतर, जैसै "बरदमूलको न्याय"॥
भक्तमुक्तिदातार कल्पतरु, कीरत कुसुमित शशिसम सेत ।
इंदहमिंद अहिंद जजत नित, भवसागरतारन सुखसेत ॥
मो मन वसहु निरंतर स्वामी, हरो विघन दुखदारिदखेत ।
प्रभुपदमाहिं प्रीति निति बाढ़ौ, ज्यों 'श्रीपति अतिशायिन हेत'
चहुँगत भ्रमत मोहमिथ्यावश, काल अनन्त गँवार गमाय ।
श्रीपतिसों नहिं नेह कियो किम, काटै भवबन्धन दुखदाय ॥
अब सुघाट शुभ वाट मिल्यो है, ठाट वाट उदघाट उपाय ।
शिव हित हेत आज सव पायो, यथा "काकतालीको न्याय" ७

मत्तगयन्द ।

जो अपनो हित चाहत है जिय, तौ यह सीख हिय अवधारो।
कर्मज भाव तजो सब ही निज, आतमको अनुभौरस गारो ॥

श्री जिनचंदसों नेह करो नित, आनँदकंद दशा विसतारो।
मूढ़ लखै नहिं गूढ़ कथा यह, 'गोकुलगांवको पैंड़ो हि न्यारो'

माधवी।

नरनारक आदिक जोनिविषै, विषयातुर होय तहां उरझै है।
नहिं पावत है सुख रंच तऊ, परपंच प्रपंचनिमें मुरझै है॥
जिननायकसों हित प्रीति विना, चित चिंतित आश कहां सुरझै है।
जिय देखत क्यों न विचारि हिये 'कहुं ओसके बूंदसों प्यास बुझै है' ॥ ९ ॥

जिय पूरव तौ न विचार करै, अति आतुर है वहु पाप उपावै।
नित आनँदकंद जिनंदतनें, पदपंकजसों नहिं नेह लगावै॥
जब तास उदै दुख आन परै, तब मूढ वृथा जगमेंविललावै।
अब पाप अताप बुझावन 'कोशन आगिलगेपर कूप खुदावै'

कवित्त।

मोह उदै अज्ञान विवशतैं, समुझि परत नहिं नीक अनीक।
सुखकारन अति आतुर मूरख, बाँधत पापभार भरहीक॥
तासु उदै दुख दुसह होत तब, सुखहित करत उपाय अधीक।
वृथा होत पुरुषारथ जैसें "पीटैं मूढ साँपकी लीक"॥११॥

माधवी।

जब ही यह चेतन मोंह उदै, परवस्तुविषैं सुखकारन धावै।
तब ही दिढ़कर्म जँजीरनसों, बँधिके भव चारक वासमें आवै॥
जिननायकसों विन प्रीति किये, कहु को भवबंधन काटि छुड़ावै।
विष खाय सों क्यों नहिं प्रान तजै, गुड़ खाय सो क्यों नहिं कान विंधावै॥ १२॥

जब आतम आप अमोहित व्है, अनआतमता तजि आतम ध्यावै ।
तब संचित जन्म अनेकनिके अघ, ईंधनको धरि ध्यान लगावै ॥
जिनचंद सुखांवुधिवर्द्धनसों, कर प्रीति निरंतर आनंद पावै ।
विप खाय न काहेको प्रान तजै, गुड़ खाय सो क्यों नहिं कान विंधावै ॥ १३ ॥

(१२)

पदावली ।

१

अवध जनम भयो हो आदि जिनंद, नाभिराय कुल कैरवंचद॥टेक
ठारह कोडाकोड़ि प्रमान, सागरलग मग मुकत छिपान ।
सो मग प्रगट होय अब मीत, धरमसुधाधर उदित पुनीत ॥अब०
रागद्वेष भ्रम मोहाताप, मिटि है सकल जगतसंताप ।
कुगति कोकतियशोकित होत. सुमतिसतीउर हरपउदोत ॥अ०॥
धरम भेद जुग शिवसुखदाय, तिहुंजग प्रभा रहै छवि छाय ।
विभा न भाव विभाव फिगत, ताहि न भावत चांदनि रात ॥अ० ॥
भवदुखकमन औषधी नेह. प्रगट प्रवल सुखदायक तेह ॥
मुनिचकोर चरकहिं चहुँओर. चितै नेत जनु जलधरमोर ॥अ०॥
[illegible] उर आनंदसिंधु. नितप्रति बढ़त आतजिनचंद ॥टेक॥

२

मेरी विथा विलोकि रमामति, काहे सुधि विसराईजी॥हमारी०२
मैं तो चरनकमलको किंकर, चाहूं पदसेवकाईजी ॥ हमा० ॥३॥
हे प्रण नाथ तजो नहि कबहूं, तुमसों लगन लगाईजी ॥हमा०॥४
अपनो विरद निबाहो दयानिधि, दै सुख वृंद बढ़ाईजी ॥हमा५॥

३

दरसे जिनेसुर स्वामीशिवरमनीरमन अभिरामीहो ॥दर०॥ टेक
जहँ तरु अशोक सुखदाई, सो रहित शोक समुदाई ॥दर०॥१॥
सुर सुमनवृष्टि जहँ राजे, मनो मनमथ आयुध त्याजे ॥दर०॥२
धुनिदिव्य अनाहद गाजै, सुनि भविकमोह भ्रम भाजै॥दर०॥३
जहँ चमर अमर सुढरावै, दशदिशि अघ ओघ उडावै ॥दर०४
सिंहासनपै जिन सोहै, लखि त्रिभुवन-जन-मनमोहै ॥ दर०॥५॥
दुंदुभि नभ नाद उदारे, मनु बाजत जीत नगारे ॥ दर० ॥६॥
शिर तीन छत्र छवि छाजे, त्रिभुवन पति चिह्न विराजै ॥दर०॥७
भामंडल भव दरसावै, लखि सोमसूर सरमावै ॥ दरसे० ॥ ८ ॥
इत्यादि वृंदगुणधारी, तुमको नित नौति हमारी ॥ दर०॥ ९॥

४

क्यो न दीनपर द्रवहु दयावर, दारुन विपति हरो करुनाकर॥क्यों०
हो अपार उदार महिमाधर, मेरी वार किम भये हो कृपनतर ।
वेदपुरान भनत गुन गनधर, जिन समान न आन भवभयहर क्यों०

---

१ "काटि करम जंजाल कालडर" यह एक तुक इस पदमें अधिक लिखी हुई है, सो पाठान्तर जान पड़ता है।

सहि न जात त्रयताप तरलगार, हे दयाल गुनमाल भालवर ।
भविक वृंद तव शरनचरन तर, भो कृपालप्रतिपाल क्षमाकर।क्यों०

५

राग खेमटा ।

वनि आई सकल सुरनार, पारस पूजनको ॥ टेक ॥
काशीदेश बनारसि नगरी, अश्वसेनदरबार ॥ पारस० ॥ १ ॥
इन्द्र सची मिलि करत आरती, संचत पुण्यभँडार ॥पारस०॥२
केई ताल मृदंग बजावत, केई करत जैकार ॥ पारस० ॥ ३ ॥
केई भाव बतावत गावत, जिनगुणवृंद अपार ॥ पारस० ॥ ४ ॥

६

जाऊं कहां तजि चरन तिहारे, हे जिनवर मेरे प्रानअधारे। टेक ॥
तुम्हरो विरद विदित संसारे, अशरनशरन हरन भवभारे ।
यातै शरन चरनकी आयो, पाहि पाहि प्रणतारतहारे॥जाऊं० ॥१
पावकतें जल सुमन सांपतें, निरधनसों कीनों धनधारे ।
और अनंत जंतकी बाधा, तव किहि विधि तुम तुरित विडारे॥जा०
मेरी बार अबार करत हो, हा हा नाथ ! किन सुनत पुकारे।
मोहि एक अवलंब आपको, सो तुम देखत दृष्टि पसारे॥जाऊं०॥३
अब तौ तारे ही वनि ऐहै, वनै नाथ नहिं विरद विसारे ।
भविकवृंदकी पीर निवारो, हो मुदमंगलके करतारे ॥जाऊं०॥ ४ ॥

७

जैनपुरान सुनो भवि कानन । जैन० । टेक ॥
जो अनादि सर्वज्ञ निरूपित, ग्रन्थ रचित निरग्रंथ प्रधानन ।जैन०

आदि अन्त अविरोध यथारथ, जो भावत सब वस्तु विधानन।जै०
जो अनादि अज्ञान निवारत, जा समान हित हेत न आनन।जैन०
मिथ्या-मत-मतंग-गंजनको, जो शासन सांचो पंचानन।जैन ॥४॥
जाको सुजस तिहूं जग व्यापत, इन्द्र अलापत तननन तानन।जै०
भविकवृंदको सो अधार है, जो सब निगमागमको आनन। जैन०

८

तेरी बनत बनत बन जाई, जिनसौं लागा रहुरे भाई! ॥टेक॥
जाको ज्ञान चराचर व्यापक, दोष न जामें कोई।
आप तरैं औरनको तार, सोई अघमल धोई। जिन० ॥ १ ॥
जाको वचन विरोधरहित सुनि, भविक मोह भ्रम त्यागै।
जैसे सुनत नादके हरिको, कुमति मतंगज भागै। जिन०॥२
देखो कोल, नकुल, बंदर, हरि, सांची लगन लगाई।
सो सब जगसुख भोगि विलसिकै, लई मुकति ठकुराई।जिन०
बूंद बूंद जल परत मेघतैं, नदी महा उमगाई।
त्यों ही सुकृत समर्जन करतें, वेड़ा पार लगाई। जिन०॥ ४ ॥
नरपरजाय पाय कुल उत्तम, अब न ढील कर भाई।
प्रीतिसहित जिनचंदवृंद भज, ज्यों भवथिति घट जाई। जि०

९

राग कजरी।

जिनस्वामी शिवगामी मेरी विपति हरो। जिन० ॥ टेक ॥
अब आइके तुमारी शरनागत परो।
प्रभु मेरी ओर हेरो मेरो कारज करो ॥ १ ॥

तुम अधम उधारनका विरद धरो।
मैं चेरो प्रभु तेरो मेरो दुरित दरो ॥ २ ॥
भविवृंदकी विधीको तुम जानत खरो।
दुखद्वंदको निकंदकै अनंदको भरो ॥ ३ ॥

१०

राग जंतवा। (बनारसी बोलीमें)

तुम त्रिभुवनपति तारनतरन हो,
हमरी खबरिया किमि विसरावल हो जी ॥ टेक ॥
हमहिं शरन तुव चरन कमलकी हो,
करहु कृपा बहु दुखपावल हो जी। तुम० ॥ १ ॥
अगम अतट भव उदधि उधारन हो,
तुमरी विरदियां हम सुन पावल हो जी। तुम०॥२॥
जप तप संजम दान दयानिधि हो,
हमसों कछू न अब बनि आवल हो। तुम० ॥ ३ ॥
अपनि विरद लखि तारो जगपतिजी हो,
भविकवृंद तुव गुनगावल हो जी। तुम० ॥ ४ ॥

११

मलार।

निशदिन श्रीजिन मोहि अधार ॥ टेक ॥
जिनके चरनकमलको सेवत, संकट कटत अपार। निश०॥१
जिनको वचन सुधारस गर्भित, मेटत कुमति विकार। निश०
भव आताप बुझावनको है, महामेघ जलधार। निश० ॥ ३ ॥

जिनको भगतसहित नित सुरपत, पूजत अष्टप्रकार । निश०
जिनको विरद वेदविद वरनत, दारुण दुखहरतार । निश०
भविकवृंदकी विथा निवारो, अपनी ओर निहार । निश०॥६

१२

श्रीगुरु दीनदयाल, धन धन श्रीगुरु० ॥ टेक ॥
परम दिगंबर संवरधारी, जगजीवन प्रतिपाल । धन० ॥ १ ॥
मूल अंठाइस चौरासी लख, उत्तरगुण मनिमाल । धन०२
देहभोग भवसों विरकत नित, परिसह सहत त्रिकाल । धन०३
शुधउपयोग जोगमुदमंडित, चाखत सुरस रसाल । धन०४
जिनके चरनकमलके रजको, इंद्र चढ़ावत भाल । धन० ॥५॥
भविकवृंद जाचत है हे प्रभु, मेरो संकट टाल । धन० ॥६॥

१३

क्या परी चूक हमारी हो ।
नेमी मोहि त्यागि गिरनार गमन कीनो ॥ टेक ॥
छप्पनकोटि जुरे जदुवंशी, हलधर संग मुरार ।
व्याहन आये सजि समाजको, मो उर हरष अपार ।
माधुरी मूरति प्यारी हो । नेमी० ॥ १ ॥
मोरमुकट कर कंकन सोहत, उर मणिमुक्ताहार ।
पशुवन देख दया उर उपजी, सब सिंगार उतार ।
पंचमहाव्रतधारी हो । नेमी० ॥ २ ॥
कौन भांति समझावों तुमको, स्वामी नेमिकुमार ।
तुमरे चाह उठी उर अंतर, व्याहनको शिवनार ।
मेरी सुरत विसारी हो । नेमी० ॥ ३ ॥

मात पिता समझावत मोको, हिलमिलि सब परिवार।
वे कुमार वरि हैं शिवसुंदरि, तू वर और कुमार।
मोको शरन तुम्हारी हो। नेमी० ॥ ४ ॥

मातु पितासों कही राजमति, मो पति नेमिकुमार।
उनके संग धरोंगी दिच्छा, चढ़कर गढ़ गिरनार।
यह कह करि व्रतधारी हो। नेमी० ॥ ५ ॥

धन्य धन्य नेमीसुर सुंदर, बालजती अविकार।
धन्य धन्य जग राजमती है, शीलशिरोमनि नार।
सुमिरत मंगलकारी हो। नेमी० ॥ ६ ॥

नेमीश्वर शिवधाम सिधारे, आठ करम निरवार।
राजमती सुरधाम सिधारी, एकाभव अवतार।
भविकवृंद सुखकारी हो। नेमी० ॥ ७ ॥

१४

क्यों मेरी सुरत विसारी हो।
प्रभु तुम भविके भय भूरचूर कीन्हें ॥ टेक ॥
सियासतीसों शपथ लेनको, रघुकुलचन्द्र विचार।
पावक कुंड प्रचंड कियो, ब्रहमंड ज्वाल विसतार।
सो सरवर कर डारी हो। प्रभु० ॥ १ ॥
द्रुपदसुताको चीर दुशासन, खैचो सभामँझार।
तब तिय तुमहिं पुकार करी है, हे जिन जगदाधार।
नेकु न अंग उघारी हो। प्रभु० ॥ २ ॥

सोमासों जब शपथ लेनको, घटमहँ विषधर धार।
तब तुमको उर सुमर सतीने, निजकर दीनों डार।
सुमनमाल कर डारी हो। प्रभु० ॥ ३ ॥
सिंधुमाहि श्रीपालतियासों, शेठ अधममतिधार।
तब तहँ सती चितारी तुमको, सुन ली तासु पुकार।
सब दुखद्वंद विदारी हो। प्रभु० ॥ ४ ॥
सती चंदनाके ऊपर जब, आयो संकट भार।
श्रीमतवीर जिनेसुरजी तब, कीनों जैजैकार।
तिहुं जग जस विसतारी हो। प्रभु० ॥ ५ ॥
दारिद दुखतैं पीड़ित है करि, एक सेठ मतिधार।
तब तुमको करुना करि टेरी, सुन लीनी तिहँ बार।
सुखसंपति विसतारी हो। प्रभु० ॥ ६ ॥
शूलीतै सिहासन कीनों, खड्ग सुमनको हार।
ऐसे आप अनेक भगतको, दीनों संकट टार।
अब मेरी है वारी हो। प्रभु० ॥ ७ ॥
रागादिक विन अमल अचल तुम, देव जगतहितकार।
भविकवृंदकी विथा निवारो, अपनी ओर निहार।
हो मुद मंगलकारी हो। प्रभु० ॥ ८ ॥

१५

ऐसी तोहि न चाहिये, जिनराज पियारे।
मो दुखद्वंद निकंदमें, क्यों वार किया रे ॥ टेक ॥
तब पावकतै जल कियो, सिय संकट टारे।
द्रुपदी चीर बढ़ा दियो, जदु सभामझारे ॥ ऐसी० ॥ १ ॥

शेठसुअन घर निधि भरी, दुखद्वंद विदारे ।
पीर चंदनाकी हरी, किये जय जयकारे । ऐसी० ॥ २॥
शूली सिंहासन कियो, ततकाल उवारे ।
सुमनमाल किय सांपतैं, यह सुजस तिहारे ।ऐसी० ॥३॥
वारिषेणके खड्गको, किय कुसुमित हारे ।
शेठ सुअनको विष हर्यो, आनंद बढ़ारे । ऐसी० ॥ ४॥
सिंह कोल कपि न्यौलका, कल्यान किया रे ।
औ अनन्त जगजन्तको, भवसागर तारे । ऐसी० ॥ ५॥
मेरी वार अवार करी, अव कारन क्या रे ।
तुहीं मोहि अवलंब है, सुनि प्रानपियारे । ऐसी० ॥ ६॥
राग दोष मद मोहका, तुम नाश किया रे ।
तदपि वृंदकी आशके, तुम पूरनहारे । ऐसी० ॥ ७॥

१६

आदिपुराणस्तुति ।

आदिपुरान सुनो भव कानन ॥ टेक ॥
मिथ्यामतगयंद गंजनको, यह पुरान सांचो पंचानन ॥ आ० ॥
सुरगमुक्तिको मग दरसावत, भविकजीवको भवभयभानन॥आ०॥
वृषभदेवको यह चरित्र जो, इंद्र अलापत तननन तानन ॥ आ० ॥
विघनविनाशन मंगलकारी, यों वरना मुनिवृंद प्रधानन आ० ॥
प्रथम वेदमें है प्रधान यह, क्रियाभेद जहँ कही विधानन ॥ आ० ॥
जिनसेनाचारजकविंदने, यह पुरान भाषा अघहानन ॥ आ० ॥
वृंदावन ताको रस चाखत, जो सव निगमागमको आनन ॥आ०॥

१७

होली।

भविजन चले है जजन जिनधाम। भवि० ॥ टेक ॥

आठ दरब अनुपम सब सजि सजि, भूषन वसनललाम। भवि० १

बाजत तालमृदंग झाँज डफ, गावत जिनगुनग्राम। भवि० ॥२॥

भावसहित जिनचंद वृंद जजि, वरनेंको शिववाम। भवि० ॥३

१८

काहे सुरति विसारी प्रभु मेरी, काहे सुरत विसारी हो। टेक॥

वेद पुरानमाहिं यह सुन नुति, तुम भविजनभयहारी हो।

तातें शरन चरनकी आयो, लीजे मोहि उवारी हो ॥ १ ॥

मोहि[1] एक अवलंब आपको, सो तुम जानत सारी हो।

मेरी वार अवार करनका, कारन क्या त्रिपुरारी हो ॥ २ ॥

जदपि आप शिवधाम वसे हो, अमल अचल अविकारी हो।

तदपि दासकी आश सकलविधि, पुजवत हो सुखकारी हो॥३॥

पावकतें जल सुमन सांपतें, निर्धनतें धनधारी हो।

[3]ती-पत श्रीपत राख लियो तुम, दीपत सभामँझारी हो ॥४॥

अंध विलोकत मूक अलापत, बधिर सुनत श्रुति सारी हो।

कूकर शूकरको सुरसंपति, आप तुरत विस्तारी हो ॥ ५ ॥

मै हूं दीन दीनबंधू तुम, दुरितताप निवारी हो।

वृंद कहै मम पीर निवारो, हो मुदमंगलकारी हो ॥ ६ ॥

---

१ न जाने क्यों मूलप्रतिमें यह पद लिखकर फिर सफेदेसे ढक दिया गया है। २ यह पद भी लिखकर काट दिया गया है। ३ स्त्रीकी मर्यादा।

(१३)

वृन्दावन-देवीदास-पदावली[1]।

१

वानी काहे न खिरी, वीर जिनेसुर[2]०

श्रीमन्धर ढिग जाय सचीपति, पूछत भगत भरी ॥ टेक ॥

तब जिनराज वचन यों उचरी (?), सुनि उर धारि हरी।

गौतम विप्र होय गनधर तब, वरषै अमिय झरी ॥

यह सुनि इंद्र जाय गौतमढिग, छलकर वाद करी।

वीरप्रभूढिग चल्यो विप्र तब, उर बहु गर्व धरी ॥ वानी०॥२

मानथंभ अवलोकत द्विजको, मिथ्यामान गरी।

दिच्छा धरत भयो मनपरजय, गनधरपद सुवरी ॥ वानी०३

ताको निमित पाय ततखिन तब, श्रीजिनधुनि उचरी।

जाके सुनत मोह भ्रम भाजत, पावत शिवनगरी ॥ वानी० ४

सो वानी जयवंत आज लगि, राजत जोत भरी।

देवीवृंद नमत नित ताको, जमकी त्रास टरी ॥ वानी० ॥५॥

२

अब न वसों गृहमाहीं रघुवर!, अब न वसों गृहमाहीं ॥ टेक ॥

जन अपवाद मिटावन कारन, पैठी पावक ठाँहीं।

धरमप्रभाव भयो सो सरवर, सब जग देखत आहीं ॥ रघु० १

---

१ प देवीदास नामके एक कवि बनारसमें कविवर वृन्दावनजी के समयमें ही हो गये हैं। उक्त दोनों कवियोंका परस्पर सविशेष सौहार्द था। इसीलिये जान पडता है, दोनोंने मिलकर अथवा आशय विचार कर ये पद बनाये होंगे। कोई २ पद केवल देवीदासके भी है।२आगे दो या तीन अक्षरोंकी जगहका कागज फट जानेसे पाठ पूरा नहीं किया जा सका।

तुव प्रसाद सुरसम सुख भोगे, अब कछु वांछा नाहीं।
अब तप धरि सो जतन करों जिमि, नारी लिंग नसाहीं॥रघु०२
यों कहि सीयसती तपधारी, शुद्धभाव उमगाहीं।
अच्युतस्वर्गविषै प्रतेन्द्रपद, पायो संशय नाहीं॥ रघु०॥ ३॥
भविक वृंदको शरनसहायी, वेद पुरान कहाहीं।
देवीको भवसागर तारो, तुम गुनगान कराहीं॥ रघु०॥४॥

३

जिनेन्द्रजन्माभिषेक।

प्रभूपर इंद्र कलश भरि लायो।
शैलराजपर साजि समाज सब, जनमसमय नहवायो॥ टेक॥
क्षीरोदक भरि कनककुंभमें, हाथोंहाथ सुर लायो।
मंत्रसहित सो कलश सचीपति, प्रभु शिर धार ढरायो॥प्रभू०॥१
अघघघ भभ भभ घघ घघ घघ घघ, धुनि दशहूं दिशि छायो।
साढ़े बारह कोड़ जातिके, बाजन देव बजायो॥ प्र०॥ २॥
सचि रचि रचि शृंगार सँवारत, सो नहिं जात बतायो।
भूषन वसन अनूपम सो सजि, हरषित नाच रचायो॥ प्र०॥३
पग नूपुर झननन नन बाजत, तननन तान उठायो।
घननननन घंटा घन नादत, भ्रुगत भ्रुगत गत छायो॥ प्र०॥४
द्रिमद्रिमद्रिम मृदंग गत बाजत, थेइ थेइ थेइ पग पायो।
सगृदि सरँगि घोर सोर सुनि, भविक मोर विहसायो॥प्र०५
तांडवनिरत सचीपति कीनों, निजभवको फल पायो।
निज नियोग करि तब सब सुर मिलि, प्रभुहि पिताघर ल्यायो प्र०

मातुगोदमें सौंपि प्रभू कहँ, वहु विधि सुख उपजायो।
प्रभुसेवाहित देव राखिकै, सुर निजधाम सिधायो ॥ प्र०॥ ७ ॥
प्रभुके वयसमान सुर तन धरि, सेवा करत सहायो।
देवीदास बृंद जिनवरको, जनमकल्यानक गायो ॥प्र०॥८॥

४

दीनको दयाल देव दूसरो न कोई।
तुम सरवज्ञ उदार दयानिधि तुमहीतैं हित होई ॥ टेक ॥
ब्रह्माजीने वेद बनायो, यों भाषै विसनोई।
हिंसातें तहँ सुरग बतावैं, ऐसी गतिमति गोई। दीन० ॥१॥
विष्णु दशों अवतार धारकें, कीरत कारन जोई।
दानव मारे देव उवारे, जा विधि महिमा होई। दीन० ॥२॥
रुद्र करै संहार कोपकरि, जगमें वचै न कोई।
नंगधरंग फिरै अरधंगी, भंगी भृंगी भोई ॥ दीन० ॥ ३ ॥
वौद्ध कहै छिनभंगुर चेतन, ध्रौव्य वस्तु नहिं कोई।
नित्यरूप जहँ वस्तु नही तहँ, मुक्ति कौनकी होई ॥ दीन०॥
वेदांती यों कहैं एक ही, शुद्ध ब्रह्म वह होई।
जड़ माया उपजाय आप ही, फँसत फजीहत होई ॥दीन०५॥
इह परलोक न पुण्य पाप है, जड़तें चेतन होई।
चारवाक नास्तिक यों भाखें, निजनिधि तिन नहिं जोई ॥दीन०६॥
राग द्वेष मद मोह कामके, ये किंकर सव कोई।
इनतें मुक्ति मिलैगी कैसें, देखो घटमें टोई ॥ दीन० ॥ ७ ॥
जाके रागादिक मल नाहीं, शुद्ध निरंजन सोई।
आप तरै औरनको तारै, धरम जहाज सँजोई ॥ दीन० ॥ ८ ॥

आदि अंत अविरोधी जाको, आगम निगम बनोई।
देवीवृंद अराधत ताको, जासों सब सुख होई॥ दीन० ९॥

५

जनमे अवधपुरी जिनराई। इन्द्र सभामें करत बड़ाई॥ टेक॥
इन्द्रादिकको आसन कंप्यो, लखि प्रभु जनम तुरित शिरनाई।
सजि समाज कौशलपुर आये, सची जाय जिन लीन उठाई॥ जन०
बालरूप सुरभूप निहारत, सहस नयन करि त्रिपति न पाई।
धरि जिन गोद मोदमुदमंडित, ऐरावत चढ़ि सुरगिरि जाई॥ जन०
केइ शिर छत्र चमर केइ ढारत, केई विविध बधाई।
पांडुक वन पांडूकशिलाके, सिंहासनपर प्रभु पधराई॥ जन०॥ ३
क्षीरोदकतें न्हवन कियो हरि, गावत बाजत नाच रचाई।
करि सिंगार सची रचि रुचिसों, सो रचना कछु बरनि न जाई॥
करि नियोग पितुसदन आनिके, मातु सौंपि बहु हरष उपाई।
प्रभुके दच्छिनकर अँगुष्ठमें, सुधा सुधापत थापत भाई॥ जन०॥
सोई पान करत नित जिनपति, त्रिपति होत त्रिभुवनके राई।
इष्ट भोग उपभोग जोग सब, वृंदारक पति देत बनाई॥ जन०॥
बालविनोद निहारी जिन छवि, तिन निज लोचनको फल पाई।
देवीवृंद कहत कर जोरे, सो प्रभु मोपर होहु सहाई॥ जन०॥

६

गाइये जिनपति जगवंदन, नाभिसुअन मरुदेवी नंदन॥ टेक॥
जिनको जस तिहुँ लोक उजागर, जो तारत भविको भवसागर १
परम सुधारस जिनकी वानी, जाकी स्यादवाद सु निशानी २॥

रत्नत्रय निज निधिके दायक, कृपासिंधु सब विघनविनायक॥३॥
देवीवृंद कहत कर जोरी, हरो प्रभू भवबाधा मोरी ॥ ४ ॥

७

नेमी व्रतधारी, अब क्या करूंरी । नेमी०॥ टेक ॥
मोहि त्याग पिय गये गिरनार, वरवेको शिवसुंदर नार । नेमी० १
मोहि न भावत भोगविलास, मो मन वसत प्रभूके पास । नेमी० २
स्वामि तजी जब राजसमाज, तब मोहि कौन भौनसो काज।ने० ३
राजमती प्रभुके ढिग जाय, दीच्छा धारी मनवचकाय । नेमी० ४
देवीवृंद नमत शिर नाय, मेरो भवभय देहु मिटाय । नेमी० ५

८

मलार ।

नेमि चरनचित राजुल धरिया, जाय चढ़ी गिरनारिपहरिया । टेक
भूषन त्यागि शीलव्रतभूषित, पंचमहाव्रत दुद्धर चरिया । ने० १
आतमज्ञान ध्यान अनुभवरस, पान करत उर आनंद भरिया।ने०
देविवृंद नत नित कर जोर, जयवंती एका अवतरिया।नेमि० ३

९

मलार ।

मोहि त्यागि नेमी मुनि भये, क्या अपराध हमार ॥ टेक ॥
ब्याह उछाह समाजसों, आये सहपरिवार ।
पशुगन सुनि वैराग धरि, जाय चढ़े गिरनार । मोहि० ॥१॥
मैं प्रभुके सग जोग लहि, वसिहौं विपिन मँझार ।
विषयभोग सब त्यागिके, पायो पद अविकार । मोहि० ॥२॥

उग्रसेनकी लाड़ली, सती शीलव्रतधार ।
देवीवृंद सदा नमें, एकाभव अवतार ॥ मोहि० ॥ ३ ॥

१०

विपुलाचलपर जिनवर आये, सुनत श्रवण नृपश्रेणिक धाये ।
समवसरन सुरधनद बनाये, जासु रुचिरता त्रिभुवन छाये ॥
द्वादश सभा जहां दरसाये, तामधि आप जिनेश सुहाये ।
जातविरोध त्याग पशु आये, जिनपद सेवत प्रीत बढाये ॥
इंद्र जजत शत मोद उपाये, हरखि हरखि गुन गान कराये ।
जिनधुनि मनहुँ मेघ गरजाये, सब जिय निजभाषा लखि पाये
गौतमगनधर अरथ सुनाये, धर्म श्रवणकरि पाप नशाये ।
श्रेणिक सोलह भावन भाये, प्रकृतितीर्थंकर बंध कराये ॥
देवीदास चरन लव लाये, कर जुग जोर नमत शिरनाये ।
हम प्रभुके शरनागत आये, राखि लेहु प्रभु मोहि अपनाये ॥

११

प्रभूपर कमठ कोप करि आयो । प्रभूपर० ॥ टेक ॥
पूरववैर विचारि अधम वह, विपुल उपल वरसायो ।
भूत प्रेत वेताल व्याल विकराल महादरसायो ॥ प्रभूपर० ॥ १ ॥
घनघमंड ब्रहमंड मंडि जहँ, जलअखंड झर लायो ।
पारस मेरुसमान ध्यानमें, मगन न कछु दुख पायो ॥ प्रभू० २
पदमावति धरनेसुरको तब, आसन सहज चलायो ।
तबहि आन पदमावति प्रभुको, निज शिर धरि गुन गायो ।
धरनिंदर फणिमंडप कीनो, सब उपसर्ग नसायो ॥ प्रभू० ॥ ४

केवलज्ञान भयो तब प्रभुको, इंद्रसहित सुर आयो ।
समवसरन रचना भइ तब ही, देखत पाप नसायो॥प्रभू०॥५॥
कमठ आय शिरनाय प्रभूको, निज अपराध छिमायो ।
त्रिभुवन जनहितहेत तहाँ प्रभु, परमधरम दरसायो॥ प्रभू०६
द्वादश सभा श्रवन करि सो धुनि, निज आतमनिधि पायो ।
प्रभु विहार करि भविकवृंदहित, शिवमग प्रगट दिखायो॥प्रभू०
आठों करम नाशि पारसप्रभु, आठोंगुन निज पायो ।
देवी नमत समेदाचलतें, जिन अविचलपद पायो ॥ प्रभू० ८

(१४)

प्रकीर्णक ।

१

श्रीरविसेनाचार्यकी स्तुति ।

माधवी ।

रविसे रविसेन अचारज है, भविवारिजके विकसावनहारे ।
जिन पद्मपुरान बखान किये, भवसागरतें जगजंतु उधारे ॥
सियरामकथा सु जथारथ भाषि, मिथ्यातसमूह समस्त विदारे ।
भविवृन्द विथा अब क्यों न हरो, गुरुदेव तुम्हीं मम प्रान अधारे ॥

२

श्रीजिनसेनाचार्यस्तुति ।

भगवज्जिनसेन कविंद नमों, जिन आदिजिनिंदके छंद सुधारे ।
प्रथमानुसुवेद निवेदनमें, जिनको परधान प्रमान उचारे ॥

जगमें मुदमंगल भूरि भरे, दुख दूर करें भवसागर तारे ।
भविवृन्द विथा अब क्यों न हरो, गुरुदेव तुम्हीं मम प्रानअधारे ॥

३

जिनवानीस्तुति ।

मनहरन ।

कुमति कुरंगनिको केहरि समान मानी,
 माते ईभ[1] माथें अष्टापद हहरात है ।
दारिद निदाघ[2] दार प्रावृट्[3] प्रचंड धार,
 कुनै-गिरि-गंड खंड विज्जु घहरात है ॥
आतमरसीको है सुधारसको कुंड वृन्द,
 सम्यक महीरुहको मूल छहरात है ।
सकल समाज शिवराजको अजज्ज जामें,
 ऐसो जैन वैनको पताका फहरात है ॥

४

दिगम्बर-स्तुति ।

माधवी ।

आतमज्ञान-सुधारस-रंजित, संजुत दर्वित भावित संवर ।
शुद्ध अहार विहार धरैं, परिहार करैं भविभाव अडंबर ॥
मूल गुणोत्तरमें लवलीन, प्रवीन जिनागममाहिं निरंबर ।
वृन्द नमै कर जोर सदा नित, सो जगमें जयवन्त दिगम्बर ॥

१ हाथी । २ ग्रीष्मऋतु । ३ वर्षा । ४ वृक्षका ।

५

पद्मावतीकी स्तुति ।

अमृतध्वनि[1]–त्रिभंगी ।

दरसत पद्मावति, दृगसुख पावति, मन हर्षावति, अति भारी ।
मंगलमुदमंडित, विघन विहंडित, सुबुधि उमंडित, हितकारी ॥
सेवक सुखदायनि, उदय सहायनि, सुगुन रसायनि, मन आनी ।
वृन्दावन वंदै, अहित निकन्दै, नित आनन्दै, सुखदानी ॥
दानी प्रन सुन, जानी निजमन, ठानी थुति नुत ।
सानी तनमन, आनी गुनगन, जानी हितजुत ॥
मेरो दुखहर, दीजै सुखवर, माता हरषत ।
गाता परसत, साता सरसत, माता दरसत ॥

६

मत्तगयन्द ।

जानत वेद पुरान विधान, प्रधाननमें अगवान अतीको ।
लौकिक रीतिविषैं बुधिवान, जहानमें जासु प्रतीति व्रतीको ॥
जो निज आतमरूप न जानत, शुद्ध सुभाव गहै न जतीको ।
तो कविवृन्द कहो तिहिंको, वह एक रती विन एक रतीको ॥

७

माधवी ।

अतिरूप अनूप रतीपतितैं, न सचीपतितैं अनुभूति घटी है ।
कविवृन्द दशौं दिशि कीरतिकी, मनों पूरनचन्द प्रभा प्रगटी है ।

---

१ अमृतध्वनिकी दोहाके साथ वनानेकी परिपाटी है । परन्तु अमृतध्वनिका त्रिभगीके साथ सयोग अबतक कहीं नहीं देखा गया । कविवर वृन्दावनजीका यह नवीन ही प्रयत्न है ।

सब ही विधिसों गुनवान बड़े,बलवुद्धि विभा नहि नेक हटी है।
जिनचंदपदांबुजप्रीति विना, जिमि "सुंदरनारीकी नाक
कटी है" ॥

८

नरजन्म अनूपम पाय अहो, अब ही परमादनको हरिये।
सरवज्ञ अराग अदोषितको, धरमामृतपान सदा करिये॥
अपने घटको पट खोलि सुनो, अनुभौ रसरंग हिये धरिये।
भविवृन्द यही परमारथकी, करनी करि भौ तरनी तरिये॥

९

जिनेन्द्रजन्माभिषेकभावना।

सुरपति जिनपति न्हवन करनको, क्षीर उदधि जल आना है।
सहस अठोत्तर कलश कनकमय, और कलश असमाना है॥१॥
कर कर कर सुर लावत मिलिकर, उच्छव होत महाना है।
मंत्रसहित सब कलश ईश शिर, एकहि बार ढराना है॥ २॥
अघ घघ घघ घघ, भभ भभ धध धध, धुनि सुनि भवि हरषाना है।
द्रिम द्रिम द्रिम मृदंग गत बाजत, नचत सची सुख माना है ३
सप्रदि सरंगी सुरसुताल मिल, गावत सुजस सुजाना है।
थुगत थुगत गत थेइ थेइ थेइ थेइ, तांडव निरत रचाना है॥ ४॥
कर जिनन्हौन सिंगार सची रचि, सो किम जात बखाना है।
धन्य धन्य वह सची सयानी, एक जनम निरवाना है॥ ५॥
करि वियोग पितु सदन सौंपि सुर, धन्य जन्म निज माना है।
जो भविवृंद सुजस यह गावै, सो पावै मनमाना है॥ ६॥

१०

श्रेयांसनाथस्तुतिः।

अरिल्ल।

सिंहपुरी सुखरास बनारस पास है।
जनमें तहँ श्रेयांसनाथ सुखरास है।
धनद रतन झर लायो पंद्रह मास है।
नववारह जोजनको नगर विकाश है॥ १॥
सुमन सुमन बरसायो सुखद सुवास है।
बीन बाँसुरी आदि बजत चहुँपास है।
सुरपत फनपत नरपत जाको दास है।
भगतिसहित सुरनारि रचत जित रास है॥ २॥
परम धम्म दरशाय हरत भवि भास है।
सेवा करत सो पावत सुरगनिवास है।
जो जिनवरको सुजस त्रिलोक प्रकाश है।
भविकवृंदकी सो प्रभु पुजवत आश है॥ ३॥

११

रमंव्यंजन।

रसव्यंजन रससों कहों, सुनत होत आनंद ॥ १ ॥
भगिनी कच्छ सुकच्छकीं, नंद सुनंदा नाम ।
व्याहीं रिखवजिनेशने, जगसुखशोभाधाम ॥ २ ॥

शुभ्रगीता छन्द ।

श्रीनाभिनंदन जगतवंदन, जयो जगहितकार
तव इंदवृंद समस्त उच्छव, कियो अपरंपार ॥
वय तरुनमय लखि राजकन्या, सहित रच्यौ विवाह ।
धरनिंद इंद खगिंद सुरपति, सजि चले नरनार ॥ ३ ॥
तहँ शुभमुहूरतमें कियो, पाणिग्रहण सुखमूल ।
जाचक जगतके सधन कीनै, सहित हित अनुकूल ॥
भोजनसमय तहँ भामिनी, गारीं कहहि धरि मोद ।
सुनि श्रवन सुख मुख प्रेम पंकत, वचन विविध विनोद ४
भोजन रसाल विशाल परसे, तहाँ मान महान ।
तिन निजनियोग विधान-लखि, वाँध्यो सकल पकवान ॥
तिहि समय कोविद कहन लागे, छंद रससुखदान ।
तुम सुनो समधी सुबुधसंयुत, सकलजन दै कान ॥ ५ ॥
खोलों जु मोदक मोदकारी, मधुरमृदुरस रंज ।
वांधों जु वेंदी शीसकी, जासों दिपत मुख कंज ॥
खोलों अमिरती सरस खुरमा, नयन—मनसुखदाय ।
वांधों करनके फूल जातें, जुगकपोल दिपाय ॥ ६ ॥
खोलों जु खाजे अति मृदुल, वांधों गलेके हार ।
खोलों जु पेड़े गंध प्यारे, वरफियां सुखकार ॥

वांधों जुगल भुजबंध कंठा, कंठके आभर्ण।
खोलों जु निमकी सेव वांधों, कहि सुभग उपकर्ण ॥७॥
खोलों जु पानी पान पत्तल, आदि सब विधि योग।
वांधों जुगलपदके विभूषन, सकलवस्तुमनोग॥
वांधों जु सारी शुभसँवारी, कंचुकी रसधाम।
वांधों जु लहँगे अरु दुपट्टे, लखत उपजत काम ॥ ८ ॥
वांधों जु वानी प्रेमसानी, गालियाँ जुत नार।
खोलों सकलपकवान पानी, करहु अब जिवनार॥
इह विधि विवाह उछाहमें, जो छंद गावै इंद।
तिनके मनोरथ सिद्ध करि है, श्रीजुगादिजिनंद ॥ ९ ॥

१२

कवित्त (३१ मात्रा)।

हे शिवतियवर जिनवर तुव पद,—पंकजमहँ कमलाको वास।
विघनविनायक सब सुखदायक, विशद सुजस अस रह्यो प्रकाश॥
मैं मतिमंद मोहवश प्रभुसों, प्रीति न कियो मिटै किमि त्रास।
अब शरनागत आनि परो हूं, सुफल करो मेरी अरदास॥१॥
दुखदारन सुखकारन प्रभुसों, प्रेम न किये हिये हित चाह।
आकुल-भार-विवश निशिवासर, भजे कुदेव कुपन्थ कुराह॥
अब तेरे पुन्यप्रताप प्रभुको, पायो दीनबन्धु जिनराज।

हे प्रभु वेगि हरो मम आपत, दीजे मनवांछित उच्छाह ॥२॥
जनरंजन अघभंजन प्रभुपद,—कंजन करत रमा नित केल।
चिन्तामणि कल्पद्रुम पारस, वसत जहाँ सुरचित्रावेल ॥
सो पदपंकज हे करुनाकर, मो उर वसो सकल सुखमेल।
श्रीपति मोहि जान जन अपनो, हरो विघन दुख दारिद जेल ३

१३

भुजंगप्रयात।

तुमी कल्पनातीत कल्यानकारी। कलंकापहारी भवांभोधितारी।
रमाकंत अरहंत हंता भवारी। कृतांतांतकारी महा ब्रह्मचारी॥
नमो कर्मभेत्ता समस्तार्थवेत्ता। नमो तत्त्वनेता चिदानंदधारी।
प्रपद्ये शरण्यं विभो लोक धन्यं। प्रभो विघ्ननिघ्नाय संसार तारी॥

१४

अनंगशेखर दंडक। (वर्ण ३२)

नमामि नाभिनंदनं भवाधिव्याधिकंदनं,
समाधिसाधचंदनं शतिंदवृंद बंदितं।
अशेष क्लेशभंजनं मदादिदोष गंजनं,
मुनिंदकंजरंजनं दिनं जिनं अमंदितं॥
अनंतकर्मछायकं प्रशस्त शर्मदायकं,
नमामि सर्वलायकं विनायकं सुछंदितं।
समस्त विघ्न नाशिये प्रमोदको प्रकाशिये,
निहार मोहि दास ये प्रभू करो अफंदितं॥

१५

अशोकपुष्पमजरी ।

जै जिनेश ज्ञान भान भव्य कोकशोक हान,
लोक लोक लोकवान लोकनाथ तारकं ।
ज्ञानसिंधु दीनबंधु पाहि पाहि पाहि देव,
रक्ष रक्ष रक्ष मोक्षपाल शीलधारकं ॥
गर्म कर्म भर्म हार पर्म शर्म धर्म धार,
जैति विघ्ननिघ्नकार श्रीमते सुधारकं ।
श्रौनकै पुकार मोहि लीजिये उबार हे,
उदारकीर्त्तिधार कल्पवृच्छ इच्छकारकं ॥

१६

मुनिराजस्तुतिः । विजयाछन्द ।

१ काममदाष्टक जीते जती जोके श्रीमतको मत जोवत तिष्टै ।
२ शंत वहइ शतवंत वहइ, नवतत्तहिं सद्दहै निष्टित शिष्टै ॥
४ काय जिके जलकायको जानइ, काय निजेव जिवायकनिष्टै ।
८ दारइ कर्म दरै दुरदाय, हियेमें यमी रमि होय महिष्टै ॥

विशेष—यह छन्द ऐसी चतुराईसे वनाया गया है कि, इसमेंसे यदि कोई अक्षर कोई पुरुष अपने मनमें ले लेवे, तो उसे वतला सकते है । उपाय यह है कि, वतलानेवालेको निम्नलिखित दो दोहे याद कर रखना चाहिये ।

दोहा ।

श्रीशीतलजिनवर महा, दायकइष्ट रसाल ।

"वृन्दावन" मनवचनतन, नावत तिनकहँ भाल ॥ १ ॥
एक दोय चौ आठ ये, क्रमतें पदपर लेख ।
पूछ बतावहु वरन गनि, शीतल पन्द्रह पेख ॥ २ ॥

सारांश यह है कि, उपर्युक्त छन्दके चारों चरणोंपर क्रमसे १-२-४-८-ये अंक क्रमसे लिखकर पूछना चाहिये कि, आपने जो अक्षर लिया है, वह किस चरणमें है? जितनें चरणोमें वह अक्षर बतलावे, उन चरणोंपर रक्खे हुए अंकोंको जोड़ लेना चाहिये। पश्चात् जो जोड़की संख्या हो, श्रीशीतलजि-नवर महादायक इष्ट" इन पन्द्रह अक्षरोंमेंसे उतने ही वॉ अक्षर निसन्देह बतला देना चाहिये। जैसे त अक्षर पहले और दूसरे चरणमें है। इन दोनों चरणोंपर रक्खी हुई संख्या-का जोड़ ३ होता है। बस "श्रीशीतल........"आदि पदका तीसरा अक्षर भी वही त है।

१७

जिनेन्द्रनेत्रवर्णन।

छप्पय[1]।

मीन कमल मद (?) घनद (?) अमिय अंतकु (?) छवि छज्जै।

---

1 इस छप्पयके प्रथम चरणमें जिनभगवानके नेत्रोंको छह उपमा दी हैं। और फिर शेष पांच चरणोंमें प्रत्येक उपमाके क्रमसे छह छह विशेषण दिये हैं। जैसे प्रथम चरणमें दूसरी उपमा कमलकी है। अर्थात् भगवान-के नेत्र कमलके समान हैं। परन्तु कैसे कमलके समान? तो सदल (प-त्रसहित), विकसित (फूले हुए), दिवसके (दिनके), सरज (सरोवरके), और मलयदेशके, इस प्रकार पांचों चरणोंमें उसके विशेषण देख लीजिये। बाकी छह उपमाओंको भी इसी प्रकार क्रमसे लगाकर समझ लेनी चाहिये। इसे पट्-विधान छप्पय कहते हैं। चतुर कवि ही इसे बना सकते हैं।

जुगल सदल अति अरुन, सघन उज्ज्वल भय सज्जै ॥
हुलसित विकसित समद, दानि नाकी (?) अति कूरे ।
केलि दिवस शुचि अति उदार, पोषक अरि चूरे ॥
सम सरज नीत चितचिंत दे, वृंद मिष्ट अनशस्त्रधर ।
जल मलय महत अकहत अकृत, देवदृष्टि दुखसृष्टिहर ॥

१८

जिनदेवस्तुतिः । छप्पय ।

सोर्ल्हे भावन सहित, छहों विधि पूज ऐक जिन ।
पंचे भमन पैन करन, हरन नेव सुनय कहे तिन ।
शून्यादिकमतमर्द्दि, सातै विधि तत्त्व बखाने ।
तीने रतन उर धार, सांत भंगनि भ्रम माने ॥
है शून्य अलोक चेहूँ दिशा, चार वेद घन सांत थल ।
षट् दरव चवालिसै द्वार नर, जय अष्टादश दोष दल ॥

विशेष—इस छप्पयमें गणधर देवकी वाणीके अक्षर जो कि वीस अंक प्रमान है; जिनदेव स्तुतिमें गर्भित करके दिखलाये गये हैं । उनके निकालनेकी विधि निम्नलिखित दोहामें बतलाई गई है ।

दोहा ।

वाई दिशतें अंक ये, लिखो वृंद सुखकार ।
जेती संख्या है तिते, जिन धुनि अच्छर सार ॥

अर्थात्—बाई ओरसे संख्याके अंक लिखनेसे गणधरदेवकी वाणी १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ अंक प्रमाण होती है ।

१९

चौदह अंकप्रमाण पूर्वसंख्याका वर्णन ।

सोरठा ।

[११] रुद्र प्रमित धर सुन्न, [७] तत्त्व [६] दरब पुनि [५] जैड़ जिने ।
लिख बाई गति मुन्न, पूरवसंख्या वरप यह ॥

अर्थात्—ग्यारह शून्य, सात, छह और पांचकी संख्या बाई ओरसे लिखनेमें ५६७०००००००००००० होती है । यही पूर्वके वर्षोंकी संख्या है ।

२०

मनुष्यसंख्या । मनहरन ।

[३६] छत्तिस अचारजके गुन तिहुं गह नुतं,
पँचाचार उनताल्तिरगें पकावना ।
चौवैन सदीव बंध तिरानवे नामवृन्द,
पन्द्रैसंर चौथे बंध अगन्ज पाता ॥
तीस तीन[३३] आयु नाके बंध पईभाग देश-
घाती [१४] चौदै गुन पंदे [illegible] ।
सोलै[१६] तीर्थ हेत [illegible],
त्यागि [illegible] ।

अर्थात्—अढाई द्वीपके सैनी पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६—अंक प्रमाण है ।

२१

दशकुलकोड़संख्या । दोहा ।

छँहों सुंन्न सैर हैर धरन, गैरुडध्वज शैशि जान ।
वाम दिशातें अंक लिखि, लखि कुलकोड़ प्रमान ।

अर्थात्—कुल कोड़की गिनती १९५५०००००० है ।

२२

अनवस्थाकुंडके सरसोंकी गिनती ।

छप्पय ।

पन्द्रहवार छतीस, सोल तेईस लिखो पुनि ।
पैतालिस अरु तीस, ऊनतिस ग्यार लिखौ चुनि ॥
सत्तानो उनईस लिखो जब, गनित रीति तब ।
होत छियालिस अंक वृन्द, गनती सुजान सब ॥
अनवस्था नामा कुंड जो, जम्बूद्वीप प्रमान है ।
तामें सरसों येते अहै, राजू गनित विधान है ॥

अर्थात्—१९९७११२९३०४५२३१६३६३६३६ ३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६इस प्रकार ४६ अंक प्रमान सरसों अनवस्था कुंडमें होते हैं ।

२३

व्यवहारपल्यके कुंडके रोमोंकी गिनती।

छप्पय।

ठार सुन्न बानवै इकीस, इकावन नौ लिखि।
चौहत्तर सतहत्तर चौतिस, वीस लिखो सिखि॥
आठ अधिक शत तीन, तीस छव्विस पैंतालिस।
तेरह चार सुधार, बामगत लिखो अंक इस॥
पैतालिस अंक प्रमान ये, रोमराशि सब जानिये।
व्यवहार पल्यके कुंडमें, जिनवानी परमानिये॥

अर्थात्—व्यवहारपल्यके कुंडमें४१३४५२६३०३०८२०
३४७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००००
रोम होते है।

इन पैंतालिस अंक प्रमान रोमोंको जब सौ सौ वर्ष गये एक एक रोम निकालै। जितने समयमें सब रोम निकलके कुंड खाली हो जाय, उतने समयको व्यवहार पल्य कहते हैं। भोगभूमिकी उत्पन्न हुई एक दिनकी भेड़के अत्यन्त सूक्ष्म रोमोंसे जिनसे कि छोटे फिर नहीं हो सकते हैं, व्यवहारपल्यका कुंड गाढावगाढ़ भरा जाता है। उन्ही रोमोंकी संख्याका यह वर्णन है।

---

(१५)

अथ छन्दशतक लिख्यते ।

दोहा ।

वंदों श्रीसरवज्ञपद, निरावरन निरदोष ।
विघनहरन मंगलकरन, वांछितार्थसुखपोष ॥ १ ॥
सिद्धशिरोमनि सिद्धिप्रद, वंदों सिद्धमहेश ।
छंद सुखदरचना रचों, मेटो सकलकलेश ॥ २ ॥
छंद महोदधितै लियो, मति-भाजन-मित[1] काढ़ ।
लिखों सोइ संछेपसों, बालख्याल अवगाढ़ ॥ ३ ॥
छंदनको लच्छन लिखत, बढ़ै बड़ो विस्तार ।
तातै कछु प्रस्तार[2] लखि, लिखों छंद सुखकार ॥ ४ ॥
लघुकी[3] रेखा सरल है, गुरुकी रेखा बंक ।
इहि क्रमसों लघुगुरु परखि, पढ़ियो छन्द निशंक ॥ ५ ॥
कहुँ[4] कहुँ सुकवि-प्रबन्धमहँ, लघुकों गुरु कहि देत ।

१ अपनी बुद्धिरूपी वर्तनके प्रमाण । २ छन्दशास्त्रमें नानाप्रकारके छन्दोंके विचार और प्रकार प्रकाशित करनेवाले ९ प्रत्यय होते हैं । उनमें एक प्रस्तार भी है । जितनी मात्राके छन्दोंके जितने भेद हो सकते हैं, उनके रूपोंके दिखा देनेको ही प्रस्तार कहते हैं। ३ छन्दशास्त्रमें लघुका रूप 'I' इस प्रकार सरल रेखा माना गया है और गुरुका 'S' इस प्रकार बक अर्थात् टेढ़ा । ह्रस्वको लघु और दीर्घको गुरु कहते है । ४ भाषा छन्दशास्त्रमें कहीं २ गुरुको लघु और लघुको गुरु मानकर पढ़नेकी परिपाटी है । यथार्थमें अक्षरका गुरुत्व और लघुत्व उसके उच्चा-

गुरुहूको लघु कहत है, समुझत सुकवि सुचेत ॥ ६ ॥

अथ आठोंगनके स्वामी, फल, और लक्षण।

दोहा।

तीनवरनको एक गन, लघु गुरुतै वसु भेद।
तासु नाम लच्छन सुनों, स्वामी सुफल अखेद ॥ ७ ॥

सवैया छंद। (मात्रा ३१)

भगन तिगुरु भू लच्छलहावत, नगन तिलघु, सुर शुभफल देत,
भगन आदि गुरु इंदु सुजस लघु, आदि यगन जल वृद्धि करेत।

रणपर निर्भर है। जैसे; "इंद्र जिनिंद्रको गोद धरें चढ़े मत्तगयन्द इरावत सोहैं" सवैयाके इस पदमें को और ढ़े यद्यपि गुरुवर्ण हैं, परन्तु लघु पढ़े जाते हैं। इसलिये इनकी एक एक ही मात्रा समझी जावेगी। संस्कृतका संयुक्ताद्यं दीर्घम् यह नियम भी कहीं २ भाषामें नहीं माना जाता। जैसे घर द्वार। इसमें द्वा संयुक्तवर्ण है, इसलिये इसके पूर्व र को गुरु पढ़ना चाहिये। परन्तु भाषावाले इसे लघु ही पढ़ते हैं।

१ इस सवैयामें बहुत ज्यादा विषय कह दिया गया है। उसे हम स्पष्ट कर देते है।

	नामगण।	लक्षण।	गणका स्वामी।	फल।
शुभ	ऽ ऽ ऽ मगण	तीनों गुरु	पृथ्वी	लक्ष्मी
	। । । नगण	तीनों लघु	सुर	शुभ
	ऽ । । भगण	आदिमें गुरु	चन्द्रमा	सुयश
	। । ऽ यगण	आदिमें लघु	जल	वृद्धिकर
अशुभ	। ऽ । जगण	मध्यमें गुरु	अग्नि	मृत्यु
	ऽ । ऽ रगण	मध्यमें लघु	सूर्य	रोग
	। । ऽ सगण	अन्तमें गुरु	वायु	भ्रमण
	ऽ ऽ । तगण	अन्तमें लघु	नभ	शून्य

रगन मध्यलघु अगनि मृत्यु गुरुमध्य जगन रविरोग निकेत।
सगन अंतगुरु वायुभ्रमन तगनंऽत, लघू नभ शून्य फलेत॥८॥

दोहा।

मगन नगन भगनो यगन, शुभ कहियतु है येह।
रगन जगन सगनौ तगन, अशुभ कहावत तेह॥ ९॥
मनुजकवितकी आदिमें, करिये तहां विचार।
देव[1]प्रबंधविषै नही, इनको दोष लगार॥ १०॥
त्याग निरख नरकवितमहँ, अगन[2] मनहिं विलखाय।
आये शरन जिनेंदके, निज निज दोष विहाय॥ ११॥
सुधासिंधुमहँ गैरलकन[3], मिलत अँमी[4] है जात।
यह विचार गुरु ग्रंथमहँ, गहन करी गनव्रात॥ १२॥
गहत प्रतिज्ञा वृंदकवि, कर गुरु चरन प्रनाम।
अरथसहित सब छंदके, परै अंतमें नाम॥ १३॥
आठ गननके छंद जे, तिनके गन जुत नाम।
छंदमाहि गरभित रहै, जिनमें जिनगुणग्राम॥ १४॥
स्यादवादलच्छनसहित, जिनवानी सुखकंद।
ताहीको रस छंदमें, प्रगट धरत भविवृंद॥ १५॥

इति पीठिकाबन्ध।

---

१ देवकाव्य अर्थात् तीर्थंकरादि पूज्य पुरुषोंके चरित्रमें अशुभगणोंका दोष नही माना है। २ अगण अर्थात् अशुभगण। ३ विषकी कणिका। ४ अमृत।

गण छन्द ।

(चार नगन) तरलनयन छन्द ।

।।। ।।। ।। ।।।।

चतुर[1] नगन मुनि दरशत ।
भगत उमग उर सरसत ।
नुति थुति करि मन हरषत ।
तरलनेयन[2] जलवरषत ॥ १ ॥

(चार भगन) मोदक छन्द ।

ऽ।। ऽ। ।ऽ।। ऽ।।

भागन[3] चार पदारथ पावत ।
दर्शन ज्ञान व्रतौ तप भावत ।
सो निहचै विवहार विनोदक ।
स्वर्गपवर्ग लहै फल मोदक ॥ २ ॥

(चार यगन) भुजंगप्रयात छन्द ।

।ऽऽ।ऽ ऽ ।ऽ ऽ। ऽऽ

समौशृत्यकी को कहै सर्व वातौ ।
लखौ चारु[4] येही अलौकीक जातौ ।

---

१ चतुरनगनसे एक अभिप्राय तो यह हैकि, चार "नगन" से यह छन्द वनता है। और दूसरा अर्थ "चतुर और नग्नमुनि" होता है। २ तरलनयन छन्दका नाम है, और मुनिके दर्शनसे तरलनेत्रोंसे आनन्दके आंसू टपकने लगते है। यह भी अर्थ है। ३ "चारभगण" पक्षमें "भाग्यसे चारपदार्थ मिलते हैं।" ४ "चारु ये" अर्थात् चार यगण।

तहाँ पक्षियोंका पती भी रहातौ।
तहाँतै कभी ना भुजंगप्रयातौ॥ ३॥

(पांच मगन) सारंगी तथा चित्रा[2] छन्द।

ऽऽऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽऽऽऽ
पाँचोंहीसे नाता जोरे तामें मग्ना[3]मांचा है।
ताही सेती नाता तोरै सोई ज्ञाता सांचा है॥
आपाहीमें सांचै राचै आपाहीको ह्वै रंगी।
सो ही वेवै आपामाहीं चित्रा वाजा सारंगी॥ ४॥

(चार तगन) मैनावली छन्द।

ऽऽ।ऽऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।
चोरौं तरैके जिते देवके भेव।
जैनैन्द्रहीकी करै प्रीतिसो सेव॥
भै टारिवेकी यही जासकी टेव।
मैं नाव लीनों मुझे तारि हे देव॥ ५॥

---

१ भुजंगप्रयात छन्द और भुजंग अर्थात् सर्प वहांसे नहीं भागते हैं। २ दूसरे कवियोंने ३ भगण और २ यगणके छन्दको चित्रा माना है। ३ "पांचों मगा" अर्थात् पांच मगण। पक्षमें पांचोंहीसे अर्थात् पांचों इन्द्रियोंसे समझना चाहिये। ४ अनेक कवियोंने इसे सारंगवृत्त माना है। ५ चार तगण।

(चार रगन) लक्ष्मीधरा[1] छन्द।

S।S S। S S। SS ।S

जगमें[2] तग्ग[3] जो चार घाती हरा।
राग संचार जाके न होवे खरा॥
सो जिनाधीश निर्दोष शोभा भरा।
बाह्य आभ्यंतरे छंद लक्ष्मीधरा॥ ६॥

(चार सगन) तोटक छन्द।

।। S। ।S। ।S। । S

गन चार समेद समाथित ही।
तजि वैर प्रमोद भरें हित ही॥
जिनगंधकुटीजुत है जित ही।
मम तो टक लागि रह्यो तित ही॥ ७॥

(चार जगन) मोतीदाम छन्द।

।S।।S ।। S।।S।

जिनेसुरको मुद-मंगल-धाम।
जहां चहुँ देव जजंति ललाम॥
प्रलंबित द्वारनिमें अभिराम।
अमोलमणीजुत मोतियदाम॥ ८॥

इति गणछन्दवर्णन।

---

१ इसे स्रग्विणी, लक्ष्मीधर, शृंगारिणी, और कामिनीमोहन भी कहते हैं। २ जगतमें। ३ तग्ग अर्थात् तज्ञ (पंडित)।

अथ वर्णछन्द लिख्यते।

श्रीछन्द (१ वर्ण)

[1]दे। मे। ह्री। श्री॥ १॥

मधुछन्द (२ वर्ण)

जिन। धुन। सधु। मधु॥ २॥

महीछन्द (२ वर्ण)

[2]जैती। गती। वही। मही॥ ३॥

मंदरछन्द (वर्ण ३, भगण)

[3]कंदर। अंदर। सुंदर। मंदर॥ ४॥

हरिछन्द (वर्ण ४ न ल)

[4]अरचत। परचत। जिनवर। हरि हर॥ ५॥

धारि (र ल)

जैन जानि। मोह भानि।
भर्म हारि। धर्म धारि॥ ६॥

---

१ हे भगवन्! मुझे लक्ष्मी दो और लज्जा भी दो। २ पृथ्वीमें यति-(मुनि) की गति 'वही' अर्थात् मोक्ष है। ३ कन्दराके भीतर सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। ४ इन्द्र और हर जिनेन्द्रदेवकी अर्चा (पूजा) करते हैं और इनसे परिचय करते हैं।

राम (स[1] ग)

जपि नामं । सुखधामं ।

जिनशामं । अमिरामं ॥ ७ ॥

नायक (स ल ल)

सबलायक । गुन छायक ।

सुखदायक । जिननायक ॥ ८ ॥

चउवंशा[2] (न य)

धरम सुअंशा । जग अवतंशा ।

मुनि परशंसा वर । चउवंशा ॥ ९ ॥

सूर (त भ ल)

नारीनके जे नैन । ते तीर तीखे ऐन ।

जाको न वेधें कूर । सोई बड़ो है सूर ॥ १० ॥

क्रीड़ा (य र ग ग)

अहो भौपीरके हर्त्ता । अहो कल्यानके कर्त्ता ।

हमारी मेटिये पीड़ा । अतींद्रीमें करौं क्रीड़ा ॥ ११ ॥

---

१ ससे सगण और गसे गुरु समझना चाहिये। इसी प्रकार म न भ य ज र स त ग ल से मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण, तगण गुरु और लघुका अभिप्राय है। २ इसे शशिवदना, चण्डरसा, और पादाकुलक भी कहते हैं।

धरा । (त म ल ग)

सांची कथा है जैनकी । ज्ञानी मथा है ऐनकी ।
हो पारखी ! देखो खरा । जो ही धरा सो ही तरा १२

प्रमानिका[1] (ज र ल ग)

घटादि क्या पटादि क्या । वृथा रटै सवादि क्या ।
सधै सुबोध सामका । वही प्रमान कामका ॥ १३ ॥

विद्युन्माला (म म ग ग)

जैनी जोगी वर्षाकाले । आपा ध्यावै बाधा टाले ।
कूकै केकी मेघज्वाला । चौघा नच्चै विद्युन्माला ॥ १४ ॥

श्लोक[2] ।

आप्तागमपदार्थोंके, स्वामी सर्वज्ञ आप हो ।
सुरिंदवृंद सेवै है, आपको इसलोकमें ॥ १५ ॥

तोमर (स ज ज)

जिसने गहा व्रत नेम । कबहूं न त्यागो तेम ।
उपसर्गहूमहँ याद । नहिं त्यागतो मरजाद ॥ १६ ॥

पुनश्च ।

जिसका प्रभूसों नेह । जग धन्य है नर तेह ।
किन होहु कोटपवाद । नहिं त्यागतो मरजाद ॥ १७ ॥

---

१ इसे प्रमाणी तथा नगस्वरूपिणी भी कहते हैं । २ जिसके प्रत्येक चरणका पांचवा अक्षर लघु और छठा दीर्घ हो, तथा दूसरे और चौथे चरणका सातवां वर्ण भी लघु हो, उसे श्लोक अनुष्टुप् कहते हैं । इसमें और कोई नियम नहीं है ।

मत्ता (म भ स ग)

जैनी जानै निजगुनसत्ता। सोई पावै शिवपुरपत्ता।
जे एकांती कुमतिविरत्ता। ते का जानैं मदकरि मत्ता १८

सारवती (भ भ भ ग)

जास अभ्यासत मोह घटै। अंतरका पट सो उघटै।
जो भवपार उतारवती। सो श्रुति सेइय सारवती १९

सुखमा (त य भ ग)

वामासुतसों यारी करिये। काहे मनमें शंका धरिये।
जाकी पदमा दासी कहिये। जो जो सुख मांगो सो लहिये २०

मनोरमा (न र ज ग)

करम शत्रुपै कहा छमा। धर्मशस्त्र ले तिन्है गमा॥
अब न चूक मै कहों जमा। चिदविलासमें मनोरमा॥२१॥

मोटन (भ भ भ ग)

मातु पिता जिमि ढोटनको। पालत है वरु खोटनको।
आप दया सम जोटनको। मेंटि विथा मनमोटनको॥२२॥

---

१ इसे हालकी भी कहते हैं। २ इसे वामा भी कहते हैं। ३ श्रीपार्श्व-नाथसे। ४ दूसरे कवियोंने इसके पहले एक २ गुरुवर्ण रखकर ११ वर्णोंका मोटनक वृत्त माना है।

लोलतरंग[1] (भ भ भ ग ग)

द्रव्यसुभाविक पर्जयमाही । हान रु वृद्धि छभेद सदा हीं ॥
सागरबीच उठंति उमंग । त्यों तित होत कलोलतरंगं ॥२३॥

सायक (स भ त ल ग)

अपने आतमके ज्ञायक है । अनुभौमें रहिवे लायक हैं ।
करमोंके छलके घायक है । मुनिपै छायक ही सायक हैं ॥२४॥

स्वागत (र न भ ग ग)

हस्तनागपुर हर्ष विशेखी । श्रीश्रेयांस नृप हू पुनि पेखी ।
दान दीन सनमान अलेखी । आदिईशमुनि स्वागत देखी २५

समुंद्रका[2] (न न र ल ग)

समकित व्रत आदि जे कहे । शकतिप्रमित तासको गहे ।
उर नित रटना जिनिंद्रका । तिनकहँ यह भौ समुंद्र का २६

अनुकूल[3] (भ त न ग ग)

ता घर होवै निधि धनमूलो । सो सुख पावै अगम अतूलो ।
मंगलकारी प्रमुदित फूलो । जापर है श्रीजिन अनुकूलो ॥२७॥

---

१ इसे दोधक तथा बन्धु भी कहते हैं । २ किसी २ ने इसे सुभद्रिका लिखा है । ३ मौक्तिकमाली भी इसे कहते हैं ।

सुमुखी (न ज ज ल ग)

निजपदको जिन सांच लखा। अनुभवस्वाद अवाद चखा॥
पुदगलसों नहिं रागरुखी। तिनकहँ भाषत हैं सुमुखी॥२८॥

हरिनी (ज ज ज ल ग)

चिदातम चिन्मयकी घरिनी। सुभाविक भावनकी परिनी।
सुवोध सुखामृतकी झरिनी। वही भवविभ्रमकी हरिनी २९

भुजंगी (य य य ल ग)

अविद्या जिसे ब्रह्मवादी गही। जिसे जैनमाहीं विभावी मही।
चिदानंदको संग रंगे रही। वही भामिनीको भुजंगी कही ३०

भ्रमरविलसिता (म भ न ल ग)

साजे आठों दरव सु लसिता। बाजे बाजें ललित सुलसिता।
जैनी आये जजन हुलसिता। फूले फूलों भ्रमरविलसिता ३१

रथोद्धता (र न र ल ग)

काललब्धि विन मुक्ति है नहीं। यों इकंत मति धारियो कहीं।
आतमज्ञान लवसों विशुद्धतो। कीजिये सुपुरुषारथुद्धतो ३२

शालिनी (म त त ग ग)

जैनीवानी जक्तकी पालिनी है। जैनीवानी आनन्दालिनी है।
जैनीवानी निर्मलाह्लादिनी है। मिथ्यावादीके हिये शालिनी है

इन्द्रवज्रा[1] (त त ज ग ग)

नंदीश्वरद्वीप महा कहा है। चैत्यालये बावन जो तहाँ है॥
अष्टाह्निकामाहिं प्रमोद हूजे। जो इन्द्रवज्रायुध धारि पूजे॥३४॥

उपेंद्रवज्रा। (ज त ज ग ग)

जहां प्रतिष्ठादिकको अखाड़ो। तहां महानंद समुद्र बाढ़ो॥
टालै सबी विघ्न दिगीश गाढ़ो। उपेन्द्रवज्रायुध धारि ठाड़ो ३५

दुतिमध्यक[2]।

कंसविध्वंसक श्रीजदुराई। जलविच कूद परे जिन ध्याई।
नाथ लियो झट देवफनिंदी। प्रगट भये दुतिमध्यकलिंदी॥

चंडी (र न भ ग ग)

जो कुवादिखलझुंडविहंडी। मोहमहामहिषासुर खंडी।
जो अबाध सुखकुंड उमंडी। सो सुभावमुदमंडित चंडी॥

कुसुमविचित्रा (न य न य)

कब कब पैहो नरपरजाई। सहज न जानो भविजन भाई।
जिनपद पूजो मन हरखाई। कुसुमविचित्रा प्रमुदित लाई॥

चन्द्रवर्त्म[4] (र न भ स)

ससवीस सुनछत्र वरन है। राशि द्वादश प्रमान करन है।
दोयैपाव[3] दिन एकपर रहै। चन्द्रवर्तमहँ भेद यह कहै॥

---

१ इन्द्रवज्राके आदिमें गुरु होता है। और उपेन्द्रवज्राके आदिमें लघु होता है, यही दोनोंमें अन्तर है। जिसके किसी चरणमें लघु हो, किसीमें गुरु हो, उसे उपजाति कहते हैं। २ यह अर्द्धसमवृत्त है। अर्थात् इसके पहले और तीसरे चरणमें ११ वर्ण (भ भ भ ग ग) और दूसरे चौथेमें (न ज ज य) १२ वर्ण हैं। ३ सवा दो दिन। ४ चन्द्रवर्त्म अर्थात् चन्द्रमाका मार्ग।

प्रियंवदा (न भ ज र)

धरम एक शिवहेत है सदा । धरम एक सुरगादि संपदा ।
अपर नाहिं तिरलोकमें कदा । मधुर बैन गुरु यों प्रियं वदा ॥

प्रमिताक्षरा (स ज स स)

जब शब्दनीतिजुत न्याय पढ़ै । कवितादि ग्रन्थपर प्रीति बढ़ै ।
गुरुतै अधीत लखि लौकिक त्यों । कवि बृंद होत प्रमिताक्षर यों ॥

तामरस (न ज ज य)

जिनपदपूजत मंगल हूजे । जिनपद पूजत बांछित पूजे ।
जिनपदमें कमला अनुरागी । जिनपद तामरसे मन पागी ॥

सुंदरी (न भ भ र)

सुव्रतशीलविभूषित जो नरी । जिन जजै वर भाव भरी खरी ।
वह वरै सुरइंद मुकुंदरी । जगतपावन सो तिय सुंदरी ॥

वंशस्थविल तथा इन्द्रवंशा (ज त ज र)

श्रीरामश्रीलक्ष्मणजानकी सती ।
विलोकि पीड़ा गुरुदेवको अती ॥
तुरंत धन्वा धुनितै निकंदितं ।
योगीन्द्रवंशस्थ विलोकि वंदितं ॥ ४४ ॥

---

१ पंडित । २ इसे इन्द्रविलम्बित भी कहते हैं ।

ललिता[1] (त त ज र)

देखो अविद्या घटमें समा रही।
आपा चिदानंद लखै कभी नही॥
जाके सुनें आपस्वरूपको गही।
आनंदकारी ललिता कथा वही॥ ४५॥

मंजुभाषिणी (स ज स ज ग)

प्रमदा प्रवीन व्रतलीन पाविनी।
दिढ़ शीलपालि कुलरीतिराखिनी।
जलअन्न शोधि मुनिदानदायिनी॥
वह धन्य नारि मृदुमंजुभाषिनी॥

वसन्ततिलका (त भ ज ज ग ग)

श्रीद्रोणजा जनकजादि रमासमानी।
घेरें सभी भरतको रितुराज ठानी॥
कीनों अनेक मनलोभनको उपायो।
तौ भी वसंत तिल काम नहीं सतायो॥

चक्र (भ न न न ल ग)

श्रीजिनमुख निरखत दुख टरहीं।
पाय अमित वित भवि सुख भरहीं॥

---

१ किसी २ ने तगण भगण जगण रगणका ललितावृत्त माना है।

पापविघन तित किहि विधि जुरहीं ।
चक्र धरम निवसत प्रभु पुरहीं ॥

अचलधृत (५ नगण और १ लघु)

करमभरमवश भमत जगत नित ।
सुरनरपशुतन धरत अमित तित ॥
सकल अथिर लखि परवश परकृत ।
धरम रतन जिनभनित अचलधृत ॥

प्रहरनकलिका (न न भ न ल ग)

यह जिनवरका धरमरतन हो ।
सुरगमुकतका सुखद सदन हो ॥
तद्गतचितसों गहहु शरनको ।
प्रहरन कलि काटन दुखगनको ॥

---

[1]चामर (र ज र ज र)

छत्रतीन सिंहपीठ पुष्पवृष्टि तापरं ।
अर्द्धमागधी सु गी[2] अशोकवृक्षकावरं ।
देवदुंदुभी अनूप देहकी प्रभा भरं ।
देखि देवदेवपै ढुराति 'वृंद' चामरं ॥

नराच (ज र ज र ज ग)

---

१ इसे तूण तथा सोमवल्लरी भी कहते हैं। २ गी॰ अर्थात् वाणी।

जैजो जिनंदचंदके पदारविंद चावसों।
मुनिंदको सुदान दे उमंगके बढ़ावसों।
अभंग सातभंगरंगमें पगो प्रभावसों।
यही उपावसों तरो न राच भोगभावसों॥

नैयमालिनी (न न म य य)
जिनवरपद पूजाकी सुनो हो बड़ाई।
गज शुक मिंड़कासे देवजोनी लहाई॥
सुमन सुमनसेती देहरीपै चढ़ाई।
तिहिं फलकरि तानै मालिनी स्वर्ग पाई॥

मंदाक्रान्ता (म भ न त त ग ग)
अर्हन्स्वामीसमवसृतमें राजते भीतिहंता।
शोभा जाकी सुरगुरु कही पार नाहीं लहंता।
जाकी काया दरशन किये दूर ही होत भ्रान्ता।
सर्वेन्द्रोंकी सब दुति जहाँ हो रही मंदक्रान्ता॥

स्रग्धरा (म र भ न य य य)
तीनो रैत्नत्रिवेनी सुविमलजलकी धारमें जो नहावै।
निश्चै घाती विघाती करमज मलको मूलसे सो वहावै॥

१ किसी २ ने इसे पंचचामर लिखा है। अनेक कवियोंका मत है कि, दो नगण और चार रगणका नाराच छन्द होता है। २ मालिनी और मंजुमालिनी भी इसीको कहते हैं। ३ मेंडक (दर्दुर)। ४ सम्यकूदर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी त्रिवैनी नदी।

पावै चारों अनंता निजगुन अमलानंद वृंदा धरा है।
ताकी काया अछाया अनुपम पगपै पुष्पका स्रगधरा है ॥५५॥

चित्रलेखा (मभनययय)

जैनीवानी अमल अचल है दोषकी नाशनी है।
सोई मोकों परम धरम दे तत्त्वकी भासनी है॥
बाकी जेते जगत जननसों है चला मार्ग भेखा।
तामें देखा कथन अमिलते दोषमें चित्रलेखा॥

शिखरिणी (यमनसभलग)

जहां कोई प्रानी चढ़त गुणथाने उपशमी।
गिरै आवै नीचे सुभगमहँ सम्यक्त्वहिं वमी॥
तहां द्वेधा धारा वहत निज भावें विवरिनी।
दही मीठा खाई वमनसमये ज्यों शिखरिनी॥

शार्दूलविक्रीड़ित (मसजसततग)

मोसों जी सततं गुरूगन जती ये कर्मशत्रू टरे।
सोई आप उपाय शीघ्र करिये हो दीनबंधू वरे॥
आपी स्वर्गपवर्ग देत जनको रक्षा करो प्रीतितैं।
आपी सर्व कुवादि जीति भगवन्शार्दूलविक्रीड़ितैं॥

इति गणछन्दप्रकरण।

१ इस उदाहरणमें छन्दका लक्षण भी दे दिया है। अर्थात् मो सों जी स त तं गु ये इस छन्दमें जो ८ गण हैं, उनके सूचक आदि अक्षर हैं। मोसे मगण सोसे सगण आदि समझ लेना चाहिये।

अथ गाथाप्रकरणाष्टक।

गाहू।

(प्रथमतृतीयचरणमें १२ और द्वितीयचतुर्थचरणमें १५ मात्रा)

जिनधुनि जलधि अगाहू। जाको नाही कहूँ थाहू।
मुनि मथि सु रतन लाहू। 'वृन्दावन' ताहि अवगाहू॥

गाहा[1] तथा अवगाहा।

(चारों चरणोंमें क्रमसे १२-१८-१२-१५ मात्रा)

चिनमूरत अमलीनो, जाके गुनसिंधुको नही थाहा।
जिन मथि सु रतन लीनो, तिन यह भवसिंधु अवगाहा॥

खंधो[3]।

(क्रमसे १२-२०-१२-२० मात्रा)

सुगुरु कहत समुझाई, तू हो ज्ञाता सहज शुद्ध निःसंधो।
काहे भूलो भाई, काया है पुग्गलहि द्रव्यको खंधो॥

चपला[4] गाथा।

(मात्रा १२-१८-१२-१५)

जेते जन जगवासी, तथा जिन्होंने मुंड़ाइये माथा।
ते सब धनके प्यासी, यह चपलाने जगत गाथा॥

उग्गाहा।

(मात्रा १२-१८-१२-१८)

अष्टांगजोगजेता, सो याही घटसमुद्र सुग्गाहा।
ज्ञानानंदनिकेता, सभेदविज्ञान 'वृन्द' उग्गाहा॥

---

१ इसे उपगीति भी कहते हैं। २ आर्या भी कहते हैं। ३ आर्यागीति तथा स्कंधक भी कहते हैं। यह आर्याका भेदविशेष है। ४ इसे गीति भी कहते हैं।

विगाहा[1]।

(१२-१५-१२-१८)

श्रीजिनजन्म उछाहा, गिरिंदपै हो रहा आहा।
शोभासिंधु अथाहा, भवि गाहा इन्द्रने लिया लाहा॥

सिंहनी।

(१२-२०-१२-१८)

समवसरनमहँ देखो, जंतूजाती विरोधको सब टालै।
अद्भुत अकथ अलेखो, हरिनीको वाल सिंहनी पालै॥

गाहिनी।

(१२-१८-१२-२०)

चेतनरस-लवलीना, निज अनुभूतिप्रदायिनी शुद्धी।
वंदत 'वृन्द' प्रवीना, जै आगमध्यातमवगाहिनी बुद्धी॥

इति गाथाप्रकरण।

अथ मात्रिकछन्दप्रकरण।

दोहा। (१३-११-१३-११)

नेमि स्वामि निरवानथल, शोभत गढ़ गिरनारि।
वंदों सोरठदेशमें, दो हाथनि शिर धारि॥ ६७॥

सोरठा (११-१३-११-१३)

शोभत गढ़ गिरनारि, नेमिस्वामि निरवानथल।
दो हाथनि शिरधारि, वंदों सोरठ देशमें॥ ६८॥

---

१ इसे उद्गीति तथा विगाथा भी कहते हैं।

हाकलिका (प्रतिचरणमें १४ मात्रा)

सब जिय निज समतूल गनै । निशदिन जिनवर वैन भनै ।
निजअनुभवरसरीति धरै । तासु कहा कलिकाल करै ॥

पद्धड़ी (मात्रा १६)

जिनबालछबी सचि लखी आय ।
मन अड़ी खड़ी टकटकी लाय ।
उमग्यौ उमंग मनमें न माय ।
तब गद्‌पद्‌ पद्धरी गाय ॥

[1]रूपचौपई (१६ मात्रा)

भवथित उघटित निकट रही है । सुगुरुवचन जुतप्रीति गही है ।
वसत सुसंग कुसंगत खोई । [2]सहजसरूपचोप इमि होई ॥

अड़िल्ल (२१ मात्रा)

कामिन-तन-[3]कान्तार, काम जहाँ भिल्ल है ।
पंचवान कर धरैं, गुमान अखिल्ल है ॥
करै जगतजन जेर, न जाके ढिल्ल है ।
शील बिना नहिं हटत, बड़ो हि अडिल्ल[4] है ॥ ७२ ॥

कुंडलिया (सर्व १४४ मात्रा)

राजै प्रभुको गोद धरि, जनमसमय सुरराय ।
तुरित जात गिरिराजपर, विधिजुत न्हौन कराय ॥

---

१ रूपचौपईके अन्तमें लघु होनेसे चौपाई होती है ।
२ आत्मस्वरूपमें 'चोप' अर्थात् प्रेम ।
३ जगल, वन, । ४ हठीला ।

विधिजुत न्हौन कराय, गाय गुन बाजत बाजे।
तांडव नाचै इन्द्र, वृंद उच्छव छवि छाजे॥
त्रिभुवनभूषन देव, तिन्हें भूषन सब साजे।
कोट भानुदुतिहरन, करन कुंडलिय विराजे॥ ७३॥

अंमृतध्वनि (मात्रा १४४)

धुनिजिन खिरत अनच्छरी, जोजनपरमित हद्द।
उपमा जाकी कहत कवि, जथा अब्दको शद्द॥
सद्दन सुनि सुनि, मग्गन सुरमुनि, पग्गत तनमन।
भज्जत भ्रमतम, सज्जत जमनम, जज्जत जिनजन॥
हर्षत सुमनन, वर्षत सुमनन, कुज्जत अलि पुन।
भव्वमुदित चित, सव्व कहत तित, सत अम्रतधुनि॥७४॥

हुलास (मात्रा १९२)

पारस जनम दिवस अनुकूले। अश्वसेन तनमनसुधि भूले।
सुर नर तन धन धरनि लुटावहि। दिविंतें देव रतनझर लावहिं॥
रतननि झरलावहिं, मनहरखावहि, सजि सजि आवहि, वाहनको
वहु भगत वढ़ावहिं, सुख उपजावहिं, दुरित नशावहिं, दाहनको॥
सुरगिर नहवावहिं, मंगल गावहिं, नाच रचावहिं, चावनको।
भविवृंद हुलासहि, जसपरकाशहि, शिवपुरवास हि, पावनको॥

---

१ इसके पहले एक दोहा होता है। कविराजने पहले त्रिभंगी रखके भी अमृतध्वनि बनाया है। (देखो पृष्ट ६३)। २ एक योजन प्रमाण। ३ मेघका। ४ सद्द अर्थात् शब्द। ५ त्रिभंगी छन्दके पहले एक चौपाई रखनेसे हुल्लास छन्द बनता है।

काव्य[1] (मात्रा २४)

श्रीसर्वज्ञ अदोष मोषहित तत्त्व बताई ।
ताहीके अनुसार, कथन जामें सुखदाई ॥
जाके सुनत प्रमान, मोहतम नाहिं रहावत ।
सुपरबोध हिय होत, वही सतकाव्य कहावत ॥ ७६ ॥

मदावलिप्तकपोल[2] (मात्रा २४)

श्रीजिनवरको जनम, जानि जब इंद्र चलै है ।
सात भाँतको सैन, आपने संग लहै है ॥
ऐरावतपर चढ़ै, तबै देखत वनि आवत ।
मदअवलिप्तकपोल[3]—लुब्ध—अलि आगे धावत ॥ ७७ ॥

शंभु[4] (मात्रा ३२)

नहिं कामी है नहिं क्रोधी है, नहिं लोभी मोही बंछा है ।
नहिं रागी है नहिं दोषी है, नहिं जामें कोऊ लंछा है ॥

---

१ यह सर्वसाधारणमें रोलाके नामसे प्रसिद्ध है। २ कविराज हेमराजजीने अपने भक्तामरस्तोत्रके अनुवादमें जो रोड़क छन्द रक्खे हैं, उनमें पहले छन्दके प्रारभमें "मदअवलिप्तकपोलमूल अलिकुल झंकारें" ऐसा पद रक्खा है। जान पड़ता है, इसीके कारण इसका नाम मदअवलिप्तकपोल पड़ गया है। अनेक कवि तो चाल "मदअवलिप्त कपोलकी" इस तरह लिखते आये, परन्तु वृंदावनजीने इसका नाम ही मदअवलिप्तकपोल रख दिया। ३ मदसे लिपटे हुए कपोलोंमें लुब्ध-लालची भौंरे। ४ शंभुको अन्याय कवियोंने वर्णिक छन्द माना है, मात्रिक नहीं। उसमें (स त य भ म म ग) के क्रमसे १९ वर्ण माने गये हैं।

निजहीमें आप सु आपीको, वह आपी पाये राचा है।
सब प्रानीका हित वानीका पत, सोई शंभू सांचा है॥ ७८॥

झूलना (मात्रा ३७)

नेह औ मोहके खंभ जामें लगे, चौकड़ी चार डोरी सुहावै।
चाहकी पाटरी जासपै है परी, पुण्य औ पाप जीको झुलावै॥
सात राजू अधो सात ऊंचे चलै, सर्व संसारको सो भमावै।
एक सम्यक्तज्ञानी यही झूलना, कूदिके 'वृन्द' भवपार जावै ७९

नरिंद अथवा जोगीरासा (मात्रा २८)

समकित सहित सुव्रत निरवाहै, राजनीति मन लावै।
श्रीजिनराज-चरन नित पूजै, मुनि लखि भगति बढ़ावै॥
चार प्रकार दान नित देकै, सुरपुर महल बनावै।
न्यायसमेत प्रजा प्रतिपालै, सो नरिंद सुख पावै॥८०॥

घत्तानंद (मात्रा ३२)

जो चारउ घत्ता[1] चार अघत्ता[2] घत्तविरत्ता हत्त करै।
सो आतमसत्ता शुद्ध अहत्ता पाय सु घत्तानन्द भरै॥८१॥

सवैया[3] (मात्रा ३१)

वीस अंक परमित गनधर धुनि, पूरव चौदह अंक प्रमान।
उनतिस अंक मनुष सब सैनी, दश कुलकोड़ जोड़ ठहरान॥
सरसों कुंड छियाल पलके, कुंडरोम पैतालिस मान।
अंक सवै या विधिसों लिखिके, परखो हरखो 'वृंद' सयान॥८२॥

---

१ घातिया। २ अघातिया। ३ इसे बीर भी कहते हैं। आल्हा, पवारा इसी ढंगपर होता है।

चौबोला (मात्रा ३०)

जाको सुनत सुदित मन भविजन, उदित होत चित चेत लहै ।
हेयज्ञेय अरु उपादेय पहिचानि 'वृंद' निजरूप गहै ॥
सुरगसुकत पदवीको पावै, रागदोषमदमोह दहै ।
ऐसो हितमित दोषरहित नित, मुनिवर सांचौ बोल कहै ॥

त्रिभंगी (जगनवर्जित मात्रा ३२)

जो सात सुभंगी, विमल तरंगी, भंग अभंगी, सुखसंगी ।
ताके अनुसारै, तत्त्व विचारै, मोह निवारै, बहुरंगी ॥
तिहुँ रतन अराधै, अनुभव साधै, त्यागि उपाधै, मन चंगी ।
सत्तादि त्रिभंगी, सो करि भंगी, होत सुरंगी, शिवसंगी ॥

षट्पद (सर्व मात्रा १५२)

जासु रुचिर छवि देखि, देखि जब त्रपति न पावत ।
सुरपति विस्मित होत, नैन तब सहस बनावत ॥
जासु पंचकल्यान, जगतकहँ सुख उपजावत ।
गुन अनंत भंडार, कहत कोउ पार न पावत ॥
शतइंद्रवृंद वंदत जिसे, सेवत है मन मोद घर ।
सो श्रीजिनचरनसरोजसों, भो मन षट्पद प्रीति कर ॥८५॥

पुनः षट्पद ।

जो जग मंगलमूल, रमा जासों अनुरागी ।
जाको ध्यावत भाव-सहित मुनिवर वड़भागी ॥
इंद्रवृन्द नागिन्द्र, जासकी सेवा साजत ।
जाहीके परभाव, अमंगल ततखिन भाजत ॥

चिन्तामन सुरतरुतै धरें, जो अनन्त परभाव वर।
सो श्रीजिनचरनसरोजसों, मो मनषट्पद प्रीति कर ॥८६॥

इति मात्रिकछन्दप्रकरण।

अथ गीताप्रकरणसप्तक।

रूपमाला[1] छंद।

(आदि रगन अन्तमें लघु। मात्रा २४)

पायके नरजन्म प्रानी, वृथा मति हि गँवाव।
चेत चेत अचेत हो मति, फिर न ऐसो दाव॥
जैनवैन अनूप अम्रत,-पान करि हरषाव।
आतमीकसुभाव निजगुन-रूपमाला ध्याव॥ ८७॥

सुगीति (मात्रा २५)

करै जवै विस्तारसों निज, मुख अमित अगनीत।
धरै मुखों प्रति कोटि कोटिक, जीभ प्रमद सहीत॥
रटै त्रिकाल विशाल जो, वृंदारपति हे मीत।
तवै कछु वह कह सकै जिन,-देव तुव जसुगीत॥ ८८॥

गीता (मात्रा २६)

भवि जीव हो संसार है, दुख-खार-जल-दरयाव।
तसु पार उतरनको यही है, एक सुगम उपाव॥
गुरुभक्तिको मल्लाह करि, निजरूपसों लव लाव।
जिनराजको गुन 'वृंद' गीता, यही मीता नाव॥ ८९॥

---

[1] रूपमालाके आदिमें एक लघु रखनेसे सुगीति होता है।

शुभगीत (मात्रा २७)

जिनंदको गिरिराज ऊपर, धारि हरषसहीत है।
सुरेशने अभिषेश कीनी, जो सनातन रीत है॥
सची रची सिंगारसों छवि, कहि न जात पुनीत है।
भरी दशों दिशि कामिनी, सुर गावती शुभगीत है॥९०॥

हरिगीति (मात्रा २८)

गरभावतारसमय जिनेसुर, मातुपर धरि प्रीति है।
सुरकन्यका सेवा करैं, जिहि भांति जिनकी रीति है॥
जननी लहै सुख 'वृंद' सोई, करहि सकल विनीति है।
करताल वीन मृदंग लै, गावै मनोहरिगीति है॥ ९१ ॥

सुगीतिका (मात्रा २८)

वृषभेश व्याह उछाह घर घर, होत अनंदवधाव ही।
धरनिंद इंद नरिंद चन्द, सवी वराती आवही॥
जँह होत मंगल मोद मंजुल, 'वृंद' सब सुख पावहीं।
मन होत वस जस सुनत गान, सुगीति कामिनि गावहीं॥९२॥

शुद्धगीता (मात्रा २८।)

सुनो संसारमें आके, जिन्होने काम जीता है।
सवी मिथ्यातको छोड़ा, गुरूवानी अधीता है॥
वही है धन्य हे भाई, वड़ाई कामकी ता है।
प्रभूकी भक्तिमें भीने, जु गावै शुद्धगीता है॥ ९३ ॥

इति गीताप्रकरणसप्तक।

---

१ चारों चरणोंके आदिमें सगण होता है।

वर्णसवैयाप्रकरणसप्तक।

मंदिरा[1] (७ भगण १ गुरु)

काल अनादि वितीत भयो, पगि पुग्गलसों जिय प्रीति ठई।
लाख चुरासिय जोनिनमें, दुख भोगतु है तिहिं संगतई॥
श्रीजिनवैन गहै न कभी, मनु ज्ञायकता गुन गोई गई।
आप स्वरूप न जान सकै जु, पियो मदिरा मदमोहमई॥९४॥

मत्तगयन्द[2] (७ भगण २ गुरु)

जन्मउछाह-निवाह-नियोग, विचारि हिये हरि हर्षित हो है।
आवत 'वृंद' समाज सजें वह, औसर देखत ही मन मोहै॥
जाय सची जननी ढिगतै, प्रभु लै कर सौपति है पतिको है।
इन्द्र जिनिन्द्रको गोद धरें, चढ़े मत्तगयंद इरावत सोहै॥९५॥

द्रुमिला[3] (८ सगण)

अपनी विरदावलि पालनको, तुव संकट काटि वहावहिंगे।
करुनानिधिवान निवाहनको, कछु लाज हियेमहँ लावहिंगे।
शरनागतवच्छल दीनदयाल, तभी प्रभुजी कहिलावहिँगे।
मति सोच करो भवि वृंद तुम्हें, सुखकंद जिनंद्र मिलावहिंगे९६

भुजंग (८ यगण)

कभी चेतनाकी निशानी न जानी, मनों ज्ञानवानी नसानी दसा है
तथा जैनवानी विजानी नही जो, मुनी भेदज्ञानी कसोटी कसा है॥

---

१ इसे मालिनी उमा तथा दिवा भी कहते हैं। २ इसे मालती तथा इंदव भी कहते हैं। ३ दुर्मिल भी इसीका नाम है।

चहै कामभोगी मनोगी विषैभोग, भोगी विषैविष्यहीमें धसा है।
जिते जक्तके जीवरासी निवासी, तिन्हें मोह आसी भुजंगे डसा है

किरीट (८ भगण)

गंधकुटी जुत श्रीजिनकी, महिमा कहिवेकहँ मो मन लाजत।
होत अनूपम रंग तहाँ जब, इंद्र नमें शिर नाय समाजत ॥
इंद्रनिकी दुति श्रीपतिके पद–कंज नखावलिमें छबि छाजत।
श्रीपतिके नखकी दुतिसंजुत, इंद्रन सीस **किरीट** विराजत ९८

माधवी (८ सगण १ गुरु)

जहं द्वादश जोजन गोल शिलापर, ठाट रच्यो निरवाधवी है जू।
उपमा तिहुंलोकविषै न लसै, महिमाजलराशि अगाधवी है जू ॥
निधि द्वार खरी कर जोर जहाँ, चितचिंतित देत सुसाधवी है जू।
जिनराज समौसृत साज तहाँ, द्रुमराजनि राजति **माधवी** है जू।

द्वितीय माधवी (७ सगण १ यगण)

जहँ द्वादश जोजन गोल शिलापर, ठाट रच्यो निरवाधवी है।
उपमा तिहुंलोकविषै न लसै, महिमा जसु वृंद अगाधवी है ॥
निधि द्वार खरी कर जोर जहाँ, चितचिंतित देत सुसाधवी है।
जिनराज समौसृत साज तहां, द्रुमराजनि राजति माधवी है ॥

इति वर्णसवैयासप्तक।

---

१ सुन्दरी, मल्ली, चन्द्रकला, सुखदानी भी इसे कहते हैं। "माधवी है जू" की वी लघु न पढके यदि गुरु पढी जावे, तो ७ सगण १ यगण और १ गुरु होता है। २ यह प्रकारान्तर है।

अथ दंडकप्रकरण।

दंडक (मात्रा ३२)

सीता अहार कीन्हों तयार, तब रामद्वार पेखै उदार।
ताही सु वार दो मुनि पधार, हैं तपागार आकाशचार ॥
बलि हर्ष धार जानकी लार, पूजे प्रचार आठों प्रकार।
भरि भक्तिभार दीनों अहार, कांतार चार दंडक मँझार १०१

अशोकपुष्पमंजिरी।

(क्रमसे एक गुरु एक लघु, ३१ वर्ण)

केवली जिनेशकी प्रभावना अचिंत मिंत,
कंजपै रहै सु अंतरिच्छ पादकंजरी।
मूष औ विडाल मोर व्याल बैर टाल टाल,
हैं जहां सुमीत ह्वै निचीत भीति भंज री ॥
अंगहीन अंग पाय हर्ष सो कहा न जाय,
नैनहीन नैन पाय मंजु कंज खंजरी।
और प्रातिहार्यकी कथा कहा कहै सु 'वृंद,
शोक थोकको हरै अशोकपुष्पमंजरी ॥ १०२॥

अनंगशेखर।

(क्रमसे एक लघु एक गुरु, वर्ण ३२)

जिनिंदके मुखारविंदसों खिरै त्रिकाल शब्द,
अब्दसी अनच्छरी अनिच्छिता धरे रहैं।
न होठ जीभ हालई न खेद स्वेद चालई,
अलौकिकी अदोष घोष सौखसों भरे रहैं ॥

समस्त जीव बूझई असूझहूको सूझई,
मिथ्यात मोहभाव भव्यजीवसों टरे रहैं।
तिसी जिनिंदचंदकी सभाविषै सुरिंद वृंद,
ओरसे चहूँ दिशा अनंगसे खरे रहैं॥ १०३॥

पुनश्च।

त्रिलोकमें त्रिकालके जितेक वस्तुभेद हैं,
विशेषजुक्त सर्व जासु ज्ञानमें धरे रहैं।
विलोकि श्रीसमोविभूति भव्यजीव आय आय,
देखि देवकी छवी अनंदसों भरे रहैं॥
जिनेशके प्रभावसों कुभावको अभाव होत,
रिद्धिसिद्धि वृद्धिसों सबै हरे भरे रहैं।
सुरिंद औ नरिंदवृंद हाथ जोर जोरके,
सुओरसे चहूँदिशा अनंगसे खरे रहै॥१०४॥

जलहरन।

(२९ वर्ण, सर्व लघु)

सुनहु अरज शिवतियवर जिनवर,
अनुपम गुन-गन-धन धरन।
तुव पदकमल-अमल-रस सुरनर-
मुनि-मन-मधुकर वशकरन॥
प्रभु जस विदित विशद अस सुनि अति,
दुरितदरन सब सुख भरन।

१ दूसरे कवियोनें जलहरण ३२ वर्णोका माना है।

भविक शरन गह कहत चहत नित,
समरथ भवदधि-जल हरन ॥ १०५ ॥

मनहरन (वर्ण ३१)

चारों घाति कर्मको विनाशिके विशुद्ध भयो,
शुद्ध गुनरतन भरो करंडवत है ।
जाके ज्ञान गुनके अनंतवें विभागमाहीं,
लोकालोक 'वृंद' झलकै अखंडवत है ॥
भवदुखउदधि अपार पार धारिवेको,
वही जिनचंददेव ही तरंडवत है ।
ऐसे अरहंत नित मंगल करन मन-,
हरन तिन्है सदा हमारी दंडवत है ॥ १०६ ॥

इति दंडकप्रकरणसमाप्त ।

कविका परिचय ।

दंडक ।

ओंका**स शी** म**जी** है **मैं**ल **वृं**द**दा**ह **व**शु**न**सि
अत्यु**ग्र** अवा**ध** ल**सो** गो**त्रई** गुन **हो** ।
बल **ज**गो**ऽनं**त **बु**ध **श**र्म **प्र**चं**ड** द**श**,
काम **वे**ग **टा**रि **शी**लता **सु**बो**ध**मा **धु**न **हो** ॥

---

१ इस छन्दमें जो अक्षर मोठे टाइपमें दिये गये है, उनको एकत्र करनेसे "काशीजीमें वृन्दावन अग्रवाल गोईलगोत धर्मचंदका वेटा शीताबो माता लालजीका नाती सीतारामुका पनती जैनी दिगंमरि रुकमनका पति ।" इस प्रकार कविनामादि निकलते हैं यह कवित्त वड़े कष्टसे वनाया गया होगा ।

नंता सु लाभ लये जीके काल्याना हेती ऐसी
है तात राखि मुझे काल पतन सुन हो ।
थुती कीजैवानी स्वादि सुगंधमई रिद्धि रुलै
कभी महा नरकादी पतति हु न हो ॥ १०७ ॥

कविनामादि निकालनेकी रीति ।

दोहा ।

या कवित्तके वरनमहँ, एक छांड़ि इक लेहु ।
तजि तुकांतके तीन तव, कविकुलादि कहि देहु ॥१०८॥

बुद्धिवानोंसे प्रार्थना ।

विजय ।

पिंड गुरू लघुको जिहिंतै बंधै, पिंगल नाम वही परमानो ।
जामें गनागन नष्ट उदिष्टरु, मेरुको आदिक भेद विधानो ॥
सो तो कछू इत भाषत नाहिं, इहां तो जिनिंदको नाम बखानो।
तामें लग्यो कहुँ दूषन होय सो, शोधि सुधारियो हे बुधिवानो १०९

अन्तमंगलाचरण ।

दोहा ।

मंगलमूरति देव है, श्रीअरहंत उदार ।
सो इत नित मंगल करो, मेटो विघन विकार ॥ ११० ॥
जिनके धर्मप्रसादसों, भई प्रतिज्ञा सिद्धि ।
सो जिनचंद हमें करो, सुखसागरकी वृद्धि ॥ १११ ॥
जयवंतो वरतो सदा, जैनधर्म दुखहर्न ।
वृंदावनको हूजियो, मंगल उत्तम शर्न ॥ ११२ ॥

यथा पाठ नवको रहत, सब थल नवपरमान।
तथा जैनको छंद यह, वरतो सुखद निधान ॥ ११३ ॥
जौलों रविशशि गगनमहँ, उदै अमंद धराय।
तौलौं यह रचना रहो, निर्मल जस सुखदाय ॥ ११४ ॥
अजितदास निजसुअनके, पठन हेत अभिनंद।
श्रीजिनिंद सुखकंदको, रच्यो छंद यह वृंद ॥ ११५ ॥
पौषकृष्ण चौदस सुदिन, तादिन कियो अरंभ।
अट्ठारह दिनमें भयो, पूरन शब्दब्रंभ ॥ ११६ ॥
जो यह छंद जिनिंदको, पढ़ै पढ़ावै जीव।
सो मनवांछित पाय सुख, अनुक्रम ह्वै शिवपीव ॥ ११७ ॥
अट्ठारहसो ठानवै, संवत विक्रमभूप।
दोज माघ कलिकों भयो, पूरन छंद अनूप ॥ ११८ [1] ॥

इति श्रीवृंदावनकृत जैनछंदावली संपूर्ण।

---

(१६)

अन्तर्लापिकाप्रकरणाष्टक।

१

नयमालिनी।

[2] व्रतपति मल को है, कौन है जन्म सार।
नभमहँ समुदभ्रे, क्या करै कर्म झार ॥

---

१ संवत् १८९८ माघसुदी दोयज शनिवारको यह पोथी वृंदावनने लिखी सो जयवंत रहो (कविवृन्दावन)॥ २ इस छन्दके चौथे चरणके सात अक्षर हैं। उनमेंसे पहले छह अक्षरोंके साथ क्रमसे अन्तके रकारको मिला मिलाकर छह प्रश्नोंका उत्तर होता है। और सातवें प्रश्नका उत्तर अन्तके सातों अक्षरोंसे बनता है। जैसे, मार, नर, पूर, जार, पर, हार और मानपूजापहार।

चित कित न लगावै, कंठमें का सु धार।
अघ अधम उदय क्या, मानपूजापहार॥

२

[1]जगजन किन नासा, का न सम्यक्त जोगें।
सुरपति रमनीसों, क्या करैं साधु भोगें॥
मत अतत उदै क्या, अल्पबुद्धी कहाल।
किन वशकृत ऊषा, कामके सूर बाल[2]॥

३

[3]तनमहँ महा को है, सातई नद्दि भन्य।
जलमहँ कित मुक्ता, को नरा जक्त धन्य॥
अनल जल किया को, मुक्त कैसें निवास।
हितवचन कहै क्यों, शीघ्र आलाप तास॥

४

[4]अधपतनसुभावी, कौन क्या धाम माहे।
द्रुपतिपति वड़े क्यों, खेतमें धान काहे॥

---

१ इसका उत्तरभी पहले छन्दकी विधिके अनुसार निकलता है। जैसे,-
काल, मल, केल, सूल, रल, बाल, कामके सूर बाल।
२ कामदेवके सूरवीरपुत्र प्रद्युम्नने ऊषाको वशमें की थी। ३ इस छन्दके अन्तके चरनके नववें अक्षर 'शी' में तुकातके सकारको मिलानेसे पहले प्रश्नका उत्तर होता है। फिर अनुक्रमसे पीछे २ अक्षरोंको जोड़ पाच प्रश्नोंके उत्तर हो जाते हैं। इस प्रकार छह प्रश्नोंका उत्तर देकर सातवें प्रश्नका उत्तर सातों अक्षरोंसे होता है। जैसे,
शीस, शीता, शीप, शीला, शीआ, शीघ्र, शीघ्रआलाप तास।
४ उत्तर पूर्ववत्। यथा, वार, वासा, वान, वाहे, वाने, वाल, वालनेहे न सार। इस छन्दके तुकातमें लघु है सो, गुरु पढना चाहिये।

मनमथ किम बाधै, प्रातभानू उचार।
प्रिय सुफल न काको, बाल नेहे न सार॥

५

छप्पय।

[1]पंकज विनु नहिं रुचिर, कहा कोकिलमहँ सोहै।
प्रतिहरि कहँ हरि कहा, करै जिन जजै सु को है॥
कालादिक नव कहा, पार्श्व जिनदिच्छातरु कहु।
समरस गुन जग कहा, काव्य नव भेद कौन सहु॥
वश लोभ मिलन इच्छै कहा, किहि कृत वृषधर शरमभनि।
सुनि उत्तर वृंदावन कहत, पंचवरन यह सरव धनि॥५॥

६

[2]दयासहित कहु कौन, धरम कवि गुन किम लक्खिय।
मुनि त्यागन किहि चहै, कौन करि भवमय नक्खिय॥
गिरिजापति पद कौन, कौन निहचै पतालगत।
पाप ताप अति घोर, ताहि क्या करिये कहो सत॥
को हरत अमति सत-मति भरत, अरु वरदायक को शरन।
सुनि वृंदावन उत्तर भनत, जैनवैन भवतपहरन॥६॥

७

[3]सुहित हेत कहु कहा, सुमति-तिय-संग कहा चहि।
कहा असैनिहि नाहिं, सुथिरपन मुनिसम किहि नहि॥

---

१ तुकातके पाचों अक्षरोंमें दशों प्रश्नोंका उत्तर है। यथा सर, रव, वध, धनि, निध, धव, वर, रस, सरवधनि, निधवरस। २ जैन, वैन, भव, तप, हर, रन, हरन, जैनवैन। ३ धरम, रमन, मनन, ननग, नगर गरव, रवन, वनज, नजस, जसप, सपन।

कहा विनीतहिं कहिय, सुजन नहिं कहा धरै मन
शिवतियके अरहंत कौन, क्या करै वैशजन ॥
वश काम कहा पावै पुरुष, त्यागवंत जन किमिवरन।
जगसुख किमि वृंदावन भनत, धर मन न गरव न जसपन ७

८

शिवतियको वर कौन, कौन भवसों शिवतियवर।
समरसमहँ किमि करिय, करिय किमि शिवपथ मनकर ॥
सुखदायक जगकहा, कौन पद्रामचंद कहँ।
कहा वारिको नाम, कहत कवि एकवरनमहँ ॥
सम्यक्तवंत चितैं कहा, शुकलध्यानको फल वरन।
सुनि उत्तर'वृंदावन' भनत, जिनवच सब कलिमलहरन ८

इति अन्तर्लापिकाप्रकरणाष्टकम्।

---

(१७)

पत्रव्यवहार।

१

श्रीललितकीर्तिभट्टारक प्रयागके प्रति।

हरिपद।

श्रीमद्वटनागाधोदीक्षित, नाभिनंद सुखकंद।
तासु पराग पराग सहित पग, परत पराग सुखंद ॥

---

१ जिन, नर, वह, चल, सम, वलि, क, कव सच वनजि, कलिमलहरन। २ श्री प्रयागमें भट्टारक श्रीललितकीर्तिजीको चिट्ठी लिखा, कई एक प्रयोजन राजद्वारमें उहा लगा था, तिसको जीते विना श्री दिगम्बराम्नायकी बात हलकी होती थी। तिस्से देवराधन करनेकू लिखाथा सो नीचे खुलेगा। (वृन्दावन) ३ वट वृक्षके नीचे दीक्षा लेनेवाले।

कीरति कलित ललित तित राजत, ललितकीर्ति गुनचन्द।
दयावधू-पत धूपतसे ध्रुव, सुबुधि-सुधानिधिचन्द ॥ १ ॥

तरलनयन।

कुमतितिमरहरदिनकर, जनमनकमलअमलकर।
विघन-सघन-दव-जलधर, जय जतिवर भवभयहर ॥ २ ॥

शार्दूलविक्रीड़ित।

शब्दब्रह्मविचारधारणधुरी चिद्ब्रह्मविद्यापती।
स्याद्वादामृततृप्तचित्त-सहजानन्दैक जैनी जती।
दीक्षा शिक्षविधानदायकमहाकल्याणकल्पद्रुमं।
नित्यं तं प्रणमामि यामि शरणं ललित्यकीर्तिक्रमं ॥ ३ ॥

अनुकूला।

वृन्दमयी है पदजुग ताकौ। आनँददाई जग जस जाकौ।
आगम-अध्यातम-मनिमाला। है उर जाके विशद विशाला ॥४॥

वसततिलका।

आनन्दहेत छविदेत सुचेतकारी।
पत्री प्रभो तव विनोदप्रदा पधारी ॥
वांची निहारि उर आनँद 'वृन्द' पाती।
पायो प्रमोद जिमि चातक बुन्द स्वाती ॥ ५ ॥

---

१ दयारूपी स्त्रीके पति। धूपत अर्थात् ध्रुव तारेके समान स्थिर। २ श्री भदैनीजी सुपार्श्वनाथजीकी जन्मकल्याणककी भूमि काशीजीमें है, सो श्वेता-म्बरियोंने दिगम्बर सम्प्रदायका तीरथ उठावनेकू उपद्रव किया सो प्रयागमें मुकदमा गया। तब यहाके अदालतमें जो कुछ फैसला होवै, वही सर्वदाके वास्ते अचल रहै है। सो श्वेताम्बरीयोंमें काशीजीमें अदालतमें और अपीलमें हार गये थे सो प्रयागमें बड़ी तदबीर करी थी, तिससे दैवी-सहायको इनने लिखा है। (वृन्दावन)

द्रुतविलंबित ।

सकल मंजुल मंगलमूल हो । चिदविभूति विभू अदुकूल हो ।
प्रणतपाल कृपाल कृपा करो । मम कलेश कलंक सबै हरो ॥

तोटक ।

सुनिये विनती करुणायतनं । प्रणतारतभंजन पाहि जनं ।
कलिकाल कराल प्रचंड अहै । जिनशासनको न उदोत चहै ॥६
समरथ्थ जथारथपथ्थधनी । तुमसे विरले विरले अवनी ।
तिहितें कछु जोग प्रयोग करो । कलि-कल्मष-ताप समस्त हरो ॥
वरणारसि तीरथवास वसै । जिननाथ सुपारस जन्म लसै ।
वह पावन पापनशावन भू । परिरच्छ प्रतच्छ प्रणम्य प्रभू ॥

समुद्रिका ।

अथ रथ पथ तीरथेशको । हथरस[1] थथमो सुवेषको ।
खल-बल-दल कीजिये कला । झटपट रथ दीजिये चला ॥

पुनश्च ।

समवसरनके[2] सुपाठकी । अति मति हुलसी सुठाठकी ।
जिहि विधि निधि सो सुसिद्धिदा । सिधि भवति सु मोहि देवता ॥

---

१ पश्चिम दिशामें हाथरस नाम शहरमें श्रीजिनमार्गी रथजात्रा होती थी, सो अनन्तससारी मिथ्यातियोंनें विघ्न किया । सो हाकिम आगरेवालेने तो हुक्म दिया के जात्रा होय । तिस्पर दौलतरामादि मिथ्यातियोंने प्रयागमें जो सदरकी अदालत है, तहा नालिश किया । तिन्होंके तिरस्कार होनेको और त्रिलोकमगलमूल श्रीतीर्थेश्वरभगवानका दिगम्बराम्नायकी विजय होनेको देवाराधनको लिखी है । (वृन्दावन)

२ श्रीसमवसरणपूजाकी नवीन भाषा बनावनेकू संस्कृत प्राकृतादिक ग्रन्थनिके अनुसार विधि मांगी है ताकी प्रार्थना । (वृन्दावन)

वसन्ततिलका।

भाषा समोसरनपूजन लालजीका।
है जैनशासन हुलासन नित्य नीका॥
पै छंदभंग अनरंग जहां तहां है।
यामें यही विदुष दूषनको गहा है॥

तोमर।

तहँ कीन बहु विस्तार। लिखि भागतेंदु (?) उदार।
रचना कथन है तेह। जजनादिमें नवनेह॥

वसंततिलका।

जो आदिनाथ-हरिवंशपुरानमाहीं।
कीनों समौसरन वर्णन मूल नाहीं॥
ताकेऽनुसार जजनादि कथा न देखी।
जो पाठ होय तब मोद भरै विशेखी॥

मोतीदाम।

* * * * * * * । सुषोड़श कारनको फल जान॥
चहै प्रथमै कछु कीरति तास। न बीज विना कहुं वृक्षविकाश॥
तदुत्तर पावन पंचकल्यान। चहै तसु पूजन हे मतिवान।
छियालिस अर्घ चढ़ावन जोग। नवोंनिधि लब्धिसमेत सुभोग॥

इन्द्रवज्रा।

तथा श्रुतस्कन्धपि पूजनीयं। चौषष्ठि रिद्धि भविचिन्तनीयम्।
साहस्र अष्टोत्तर नाम नीके। ले अर्घ पूजे जिनराज नीके॥

मोदक।

आप महामतिमंडित पंडित। कीरति श्रीब्रहमंडविमंडित॥

जोग अजोग विचारि अखंडित। उत्तर वेग लिखौ अविहंडित॥

सारवती।

चारक नारक वास अहै। लोक विलोक प्रसिद्ध कहै।
तामधितै मोहि पाहि विभो। दीनदयाल समर्थ प्रभो॥

भुजंगी।

हमें आपका है बड़ा आसरा। सुनो दीनके बंधु दाता वरा॥
नृपागारगर्तातितै काढ़िये। अभैदान आनंदको बाढ़िये॥

रथोद्धता।

और क्या अधिक आपसों कहैं। आप तात सब जानते अहैं।
कीजिये अब उपाय नासते (?)। मोह 'वृन्द' सुख होय जासते॥

(नादविद्यावित् चेतनाथ पंडितसे प्रार्थना।)

दोहा।

चिदानंद चिद्रूप घन, तास दास सुखरास।
तिनप्रति करजुग जोरि नित, विनवत 'वृन्द' हुलास।

प्रमाणिका (गुर्वादि)।

भूल चूक शोधको। लीजिये सुबोधको।
कीजिये न क्रोधको। जानि बालबोधको॥

सोरठा।

केवल ग्रेह दिग चंद, संवत शक विक्रम विगत।
कातिक कलि कुज छन्द, 'वृन्दावन' पत्री लिखी॥

२

मथुरानिवासी पंडित चम्पारामजीके प्रति।

शार्दूलविक्रीड़ित।

स्वस्तिश्री मथुरापुरी अघदुरी, सद्धर्मचक्रद्धुरी।
जंबूमन्मथ मोक्षकामिनि वरी, सर्वार्थसिद्धेश्वरी॥
चंपाराम पुनीत श्रावक तहां, स्याद्वादविद्याधुरी।
काशीतें तिनको जुहार लिखतो, वृंदावनो माधुरी॥ १॥

लोलतरंग।

आप सदा सुखरूप विराजो। श्रीजिनशासनसों हित साजो॥
शुद्ध चिदानँदकंद अराधो। विघ्न विनिघ्न रहो निरबाधो॥ २॥

तोटक।

तुमरे जसको रस फैल रह्यो। दशहूं दिशमाहिं सुवास लह्यो।
अवकाश नहीं दुसरे जसको। तिहँ वर्न सकै कवि है अस को॥३॥

वसन्ततिलका।

श्रीरामचंद्र वलिभद्र सुभद्रजी है।
ताकी कथा सुकृत प्राकृतमें कही है॥
सीता सुता कवनकी सु तहाँ गही है।
जा भांति होय सु इहाँ लिखियो सही है॥ ४॥

पुनश्च।

जज्ञाधिकार जिन आदिपुराणजीका।
खंडान्वयी सुगम तासु प्रबुद्ध टीका॥
हे मित्र! मोहि अति शीघ्र वनाय ठीका।
भेजो जिसे पढ़त भ्रांति मिटै सु हीका॥ ५॥

तोमर।

लक्ष्मीकुमुदमुदचंद। श्रीशेठलक्ष्मीचन्द।

जयवन्त राधाकृष्ण। गोविंद गुनमनिजिष्ण॥ ६॥

त्रिभुवन सु गुनभंडार। जस जासु जग विस्तार।

जिमि होहिं जिनगुनमग्न। सो करहु काज अभग्न॥ ७॥

तिनसों बहुत परकार। कहियो जुहार विचार॥

धरि धरम नूतन नेह। पत्री लिखों गुनगेह॥ ८॥

दोहा।

मित्र तुम्हारे दरसकी, चाह रहत नित चित्त।

कब मिलि हो सो दिवस धन, पावन परम पवित्त॥ ९॥

संवत्सर विक्रम विगत, वानै रंध्र गर्ज चंदै।

पौष सेत दुति भौमदिन, लिख्यो पत्र जन 'वृंद'॥ १०॥

३

जयपुरके दीवान अमरचन्द्रजीके प्रति।

अनुष्टुप्।

प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्यं जिनेन्द्रं विघ्नसूदनम्।

लिख्यतेऽदो वरं पत्रं मित्रवर्गप्रमोददम्॥ १॥

मोदक।

जैपुर जैनपुरी जनु राजत। धर्मसुखी जन जत्र विराजत।

शोभित श्रीजिनमंदर सुंदर। देखि प्रमोदित होत पुरंदर॥२॥

स्यात्पदमुद्रित श्रीजिनशासन। जत्र उदै उरध्वांत विनाशन।

जेम अखंडल खंड अखंडित। तेम सु पंडितमंडलमंडित॥३॥

छप्पय।

(सिंहावलोकन विसदृशउपमालंकार)

अमर कही जे तास, जास पुनि होइ न मरनो।
मरनो करै विनाश, सुधाधर सो निरवरनो॥
वरनो निरजर सार, बंध न लगार जासु कहँ।
कहहिं कलाकर वाहि, नाहिं कन है कलंक जहँ॥
जहँ नित उदोत सोइ सोमवर, वर विधुसो तुम गुन अमर।
अमरेंदुसार लखि बुध कहत, "अमरचन्द सांचे अमर"॥
गगनइन्दु जुतछयी, आप छायकी अरोगित।
वह करकशको ईश, आप कोमल रस भोगित॥
वह उडगनमधि कृशत, आप बुधिमध प्रसन्न तन।
वह खेचर सकलंक, आप निकलंक ज्ञानघन॥
वह अस्तसहित तुम नित उदय, तुम समान किमि सो अमर।
तुम निजसरोज-रत वर भ्रमर, "अमरचन्द सांचे अमर"॥

दोहा।

वृन्दावन तुमको कहत, श्रीमत 'जयतिजिनंद'।
काशीतें सो बांचियो, अमरचन्द सुखकंद॥ ६॥
धरमबुधीधर धीरता, धोरी धन धनमान।
राजमान गुनखान वर, अमरचन्द दीवान॥ ७॥
अमरचंदजसचंद्रिका, फैलि रही चहुँओर।
सुनिय हंस मिलवौ चहत, यह चित चतुर चकोर॥८॥
कुशल छेम मिथ पूछियो, यह वर लोकाचार।
सो परोख हम करत है, वांचो 'जयतिजुहार'॥ ९॥

ज्ञानानन्दसुभावकी, तुमकहँ प्रापति होइ ।
यह वांछा मेरे रहत, मिटो सकल भ्रममोह ॥ १० ॥
मन्नालाल सखा सुमुख, समुखी सु (?) मुख सुनु ।
कलाकरनिकर नित बढ़ो, आनँदअम्बुधि पूनु ॥ ११ ॥
जयशशि कवि नँदलाल रवि, भये अलौकिक अस्त ।
अब कविगन उड़गन धरहिं, जहँ तहँ उदय प्रशस्त ॥ १२ ॥
आप सुमन गुरुसम सुमम, सुमनशमन जयवंत ।
विद्या बुधि बलवंत जय, मन्नालाल महंत ॥ १३ ॥
और जिते तहँ है अबै, पंडित स्वानुभवीय ।
तिन सबकहँ सनमानजुत, "जयति जिनेश" कहीय ॥१४॥

हरिपद तथा शंभू ।

अब तुम सभासुधारन जे है, पंडित मंडितज्ञान ।
मन्नालाल आदि श्रुतिज्ञाता, स्यादवाद परमान ।
तिनसों या अपनी बुधिसों तुम, इन प्रश्नको ज्वाब ।
भेजि दीजियो सुगम छिमाकर, तजि उपहास शिताब॥१५

प्रश्न १— शिखरिणी ।

सुनी भैया वैया वर व्रतधरैया मुनिवरा ।
करै कोई कोई रुगितहिं रसोई निजकर ॥
तहां शंकातंका उठत अति बंका विवरणी ।
निरंभी आरंभी अजगुत कथा भीम करणी ॥ १६ ॥

प्रश्न २— कुसुमलता ।

नभ अनकोल अनंतप्रदेशी, तातें केवल ज्ञान अनंत ।
यों सिद्धनमहँ प्रगट कही तहँ, जुगतसहित शंका उपजंत ॥

जो तसु अंत लख्यौ केवल तो, जासु अंत सो है न अनंत।
पुनि तिहिमध्य लोक नभ भाखैं, आदि अंत विन मधि किहि भंत॥

प्रश्न ३— रोड़क।

कहे अनंते जीव तासुमहँ दोषराशि कहि।
गनति विना किमि दाय होय सो उर विचार लहि॥
पुनि नित शिवपुर जात सो न क्यों राशि समो है।
उत्तर लिखहु सम्हार जुक्तजुत ज्यों मन मोहै॥ १८॥

प्रश्न ४— केदारा।

अनंता नाम जो भाख्या। सो संज्ञा है कि संख्याख्या।
जो संख्या है तो ह्वै खंडो। अखंडोको न ह्वै खंडो॥ १९॥

प्रश्न ५— भुजंगी।

अनेकांत तो हेतुका दोष है।
सबी हेतुवादीनके पोष है॥
तहां स्यादवादी अनेकांतका।
करै थापना क्यों कहो भ्रांत का॥ २०॥
सदष्टासहस्रीविषैं क्या लिख्यौ।
लिखो जैशशी सो लिख्यौ सो लिख्यौ (?)॥

प्रश्न ६– तथा वेदके भेद तीनों तहां।
नियोगादि सोऊ लिखोगे यहां।

प्रश्न ७– (समयसारके निम्नलिखित मगलाचरणके अर्थके विषयमें)

चौपाई।

नयनय लहय सार शुभवार। पयपय दहय मार दुखकार॥
लयलय गहय पार भवधार। जयजय समयसार अविकार॥

प्रार्थना-दोहा।

काशीनाथ तुम्हें करै, वारंवार जुहार।
धर्मस्नेह बढ़ाइयो, पढ़ियो सुवुधि सुधार॥

तोमर।

जिनश्रुत लिखाय सुधाय। तुम दिये मोहि पठाय।
सो मिले अब सुखरास। ल्याये विशेसरदास॥
तत्त्वार्थशासन सार। अरु समयसार उदार।
ज्ञानारणव शिवपंथ। श्रीदेवआगम ग्रंथ॥
श्रीसमायकको पाठ। पुनि द्रव्यसंग्रह ठाठ।
अध्यात्मबारहखड़ी। त्रेपनक्रिया नगजड़ी॥
श्रीवर्द्धमान पुरान। पूजा समवसृत जान॥
द्वैसंधिके कछु पत्र। ये ग्रन्थ आये अत्र॥ २६॥
तुम कीन अति उपकार। नहिं तुम सदृश संसार।
जयवंत वरतौ संत। वृषवंत सुहृद महंत॥ २७॥

हरिपद।

एक अरज मेरी निज चित धरि, सुनियो रसिक सयान
श्रीरविषेनकथित जो संस्कृत, वरनत पद्मपुरान॥
सो तुम आगे लिखी हमें की, लिखो जात है शुद्ध।
सो अब भेजो ललित कृपाकरि, ज्यों सुख पावै वुद्ध॥

दोहा।

इत ऐसी सुनियत अहै, लिखी फिरंगी प्रश्न।
जैपुरमें जिनमतिनको, जिनमतभाषित जिश्न॥

तासु ज्वाब जयचन्दजी, लिखौ सुजुक्त वनाय।
सोऊ इत लिख भेजियौ, कृपाभाव दरसाय ॥

तोटक।

निज चेतनमें कृत जोति लखो। पर द्रव्यनिसों न मिलो परखो।
अनुभौरस तास विलाश करो। निरद्वंद दशा धरि मुक्ति वरो ॥

चौपाई।

रिषभदास पुनि घासीराम। और पंच जे सुगुननिधान।
विगति विगति 'श्रीजयति जिनंद'। कहियौ सबसों धरि आनंद ॥
धर्मचन्द्र मम पिता पुनीत। तुमको करहिं जुहार सुमीत।
राखो नित चित वृषअनुराग। शिक्षापत्र लिखो वड़भाग ॥

सुमुखी।

दो शशि जम्बु सुदीपविखै। हैं परतच्छ अनादि अखै।
त्यों वृषदीपविषै शशि दो। दिल्लिथ जयपुरमाहिं अहो ॥

दोहा।

*संवत्सर विक्रम विगत, वेदैं उरगं गर्ज चन्द।
कुज तिथि पंचमि जेठकी, लिख्यौ पत्र सुखकन्द* ॥ ३५ ॥

---

* जेठवदी पचमी मगलवार सवत् १८८४। * पत्रमें वार्तारूप प्रयोजन भी लिखा है। सो इहा तो इस चिट्ठीका नकल लिखना भी उचित नहीं था। परन्तु जो प्रश्न लिखा था, तिन प्रश्नोंका जवाब आया सो नकल लिखना योग्य जाना। तब प्रश्नावली लिखा है। (वृन्दावन)

४

पण्डितेन्द्र जयचन्द्रकी ओरसे।

अनुष्टुप्।

प्रणम्य सर्वविद्देवं वीतरागं भवच्छिदं।
लिख्यते जयचन्द्रेण पत्रं मित्रप्रमोददं॥

छप्पय।

वानारसि शुभ थान, बसै वृन्दावन धरमी।
तासु पत्र इत आय, किये हमको तसु मरमी॥
उत्तर हम हू लिखै, तासुको करि चितनरमी।
पहुंचौ विघन विडारि, निकट ताके विन गरमी॥
वर पत्र मित्रको प्रीति धरि, पढ़ै रीति यह सज्जना।
तव मिलनेके सम होय सुख, सुधापयोनिधिमज्जना॥

दोहा।

उत्तम जनके परस्पर, होइ जु शिष्टाचार।
जयशशि करै जुहार वर, वढ़ि (?) वृन्दावन सार॥

मत्तमयूर।

पुण्यायता जो विधि सारी सुखकारी।
पापायता जानि करारी दुखकारी॥
रागी द्वेषी नाहिं न होवै निजवेता।
त्यागी योगी आतम वैवै धरि चेता॥

चित्री।

न्यारी न्यारी उत्तर कारी पढ़ि सारी।
लारी लारी अंक *चारी जु तुमारी॥

मता विवेकी छन्द विवेकी तुम बांचो ।
चित्तारेकी वंकन एकी कर सांचो ॥
तत्त्वाधारं है सुखकारं जगभूषा ।
मिथ्यावादं छंडि कुनादं सब भूषा ॥

मनहर ।

जैसे वृन्दावनमाहिं नारायन केलि करी,
तैसे 'वृन्दावन' मित्र करै है वनारसी ।
वंशरीति राग रंग ताल ताल आये गये,
मान ठान आनि आनि धरेगा वनारसी ॥
कुंजगली आपनमें पण्य धरें अंवरको,
अंगनाको अर्थ लेय देत यों वनारसी ॥
हर कर्म राक्षसको निकट न आन देत,
संतनिसों प्रीति जाकी ऐसा भावनारसी ॥

तोटक ।

सुनि मो वच मित्र पढ़ो जिनको । मत उज्वल दोषविना तिनको ।
वर शब्द विदोष गहो श्रुतिमें । नय साधि अनेक धरो मतिमें ॥
अनुभौ करि आतमशुद्ध गहो ।
तजि बंध विभाव निचिंत रहो ।
जिन आगमसार सुशीश धरौ ।
शिव कामिनि पावनि वेगि वरौ ॥

दोहा ।

वानारसि वर नगरमें, विरले जैनी लोक ।
तोऊ तुमसे वसत हौ, यातें मानें थोक ॥

छप्पय (अन्तर्लापिका).

काम नाम कहु कौन, कूपमें किमि जल आवै ।
वीच जवर्ण गजेन्द्र, क्षीणवय नाम कहावै ॥
जहर दूसरो नाम, चीरकी लखि रंची(?)भनि ।
जलज होय किहि थान, सृष्टि संहारकको गनि ।
कहु अंतिम यतिके वरणको, कमल थापि उत्तर सुधर ।
'वृन्दावन' केलिनिवास जो, काशी कुंजगली सहर ॥

दोहा ।

धर्मप्रीतिकरि फेरि दल, लिखियौ चतुर सुजान ।
बुद्धि तुम्हारी है बड़ी, यह जानी अनुमान ॥ १२ ॥

चौपाई ।

काशीनाथ मूलशशि नाम । नंतराम औ आरतराम ॥
धरमचन्द पुनि गोकुलचन्द । इन्है आदि वृषधर सुखकन्द ॥
तिनको करिये शिष्टाचार । जयपुरतें जयचन्द जुहार ॥
पहुंचो तिन ढिग दल आधार । पढ़ौ सबै मिलि शुद्ध उचार ॥

दोहा ।

नंदलालकी सबनिको, यथायोग्य वचसार ।
पढ़ियो प्रीतिसमेत तुम, सज्जनता हितकार ॥

---

१ इस छप्पयके अन्तमें जो "काशी कुंजगली शहर" पद है, उसके प्रत्येक अक्षरके साथ अन्तका र जोडनेसे क्रमसे सब प्रश्नोंका उत्तर निकलता है जैसे कार (कार्य), शीर (पानीके सोता), कुंर, जर, गर, लीर सर, हर ।

संवत्सर विक्रमतनों, गगंन उरंग गंज चन्द ।
पौषशुक्ल भृगु दोज दिन, लिख्यौ पत्र जयचन्द ॥

श्रीरस्तु ।

अथ प्रश्नोंका उत्तर ।

१ प्रश्न—पद्मपुराणमें उत्तरपुराणमें रामचंद्रजीके कथनमें अन्तर है सो कैसे है? अर द्विसन्धान महाकाव्यमें राम पांडवनिका दोय अर्थ लागै है तामें कैसे लिख्या है?

उत्तर—यह पूर्वाचार्यनिकी विवक्षाका भेद है। तहां अल्पज्ञकै विधिनिषेध करने लायक बुद्धि नाहीं । द्विसंधान काव्यमें भी कछू खोल्या नाहीं, जैसे है, तैसे प्रमाण है।

२ प्रश्न—सुननेमें आवै है जो जीव पर्याय छोड़ै तब पहले उर्द्धगमन करै। सो यह कैसे?

उत्तर—यह नेम नाहीं। जीव कर्मरहित होय तब तौ ऊर्द्धगमन स्वभाव है, सो ऊर्द्ध ही जाय । अर कर्मरहित संसारी है सो विदिशाकूं वर्जिकरि चारि दिशा अर अधः ऊर्द्ध जहां उपजना होय तहां जाय है।

३ प्रश्न—जिनप्रतिमा खंडित होय तौ कौन कौन अंग खंडित भये अपूज्य होय?

उत्तर— उक्तं च—

नासी मुखे तथा नेत्रे, हृदये नाभिमंडले ।
स्थानेषु व्यंगतैतेषु, प्रतिमानैव पूज्यते ॥

जीर्णं चातिशयोपेतं तद्व्यङ्गमपि पूजयेत्।
शिरोहीनं न पूज्यं स्यात्, निक्षेप्यं तन्नदादिषु ॥ २॥

अर्थात्—प्रतिमा नासिका, मुख, नेत्र, हृदय, नाभिमंडल, इनि स्थानविषैं खंडित होय तौ पूजिये नाहीं। बहुरि जीर्ण, बहुत कालकी होय (तथा कोई अतिशययुक्त होय) कोई अंग घसि गया होय, अंगहीन होय, तौ पूज्य है। अर मस्तकरहित होय तौ पूज्य नाहीं। ताकूं द्रहकूपादि विषै क्षेपिये।

४ प्रश्न—दर्शनज्ञानचारित्रमयी जीवकूं शास्त्रनिमें सुनिये है, तहां सिद्ध अवस्थाविषैं चारित्र क्यों न कहा?

उत्तर—चारित्र संसारावस्थामें त्याग ग्रहणकी अपेक्षा कहिये है। अर शुद्ध जीवकी अपेक्षा दर्शनज्ञानस्वरूप कहा है। द्रव्यसंग्रहकी गाथा देखौ। अर ज्ञानविषै थिर होना ही चारित्र कहा है। यातै ज्ञानहीमें गर्भित भया। सिद्ध अवस्थामें न्यारा कहनेकी विविक्षा नाहीं।

५ प्रश्न—छह महीना आठ समयमें छह सौ आठ जीवनका मोक्ष होना कहा है। अर पुराणनमें तीर्थंकरनके साथ हजारों मुक्ति भये सो कैसें?

उत्तर—पुराणनिमें समुच्चय कथनिकरि कहा है। जैसे कोई राजा चढै, तब तिसके साथी ताके जेते उमराव होय ते सबही चढ़े कहै है। तहां कोई आगे चढ़ै कोई पीछे चढ़ै ताकी विविक्षा न करै तैसे जानना।

६ प्रश्न—जयपुरमें जिनमन्दिरमें पूजा किस रीति होय है।

उत्तर—जयपुरमें सम्प्रदाय दोय हैं। एक वीसपंथ एक तेरापंथ। तहां वीसपंथिनिकै भट्टारक पंडित है ते आशाधरकृत पंडित (पाठ) है, तिस अनुसार करैं है अर तेरापंथिनकै दूजा पाठ प्राचीन आचार्यका किया है, तिस अनुसार करै है। तेरापंथिनमें भी वरस पच्चीसेकसूं गुमानीराम भेद थाप्या है। तहां तेरापंथिनका दूसरा मन्दिर है तहां तिस रीतिसों होय है।

७ प्रश्न—जिनके चरणनके चन्दनका लेप करना युक्त है कि अयुक्त है।

उत्तर—पूजनके पाठनिमें कोईमें तौ अग्रभूमिमें लेप करना लिख्या है अर कोईमें प्रतिमाके तलै पीठिका प्राषाण है ताके लेप करना लिख्या है अर कोईमें चरननिके लेप करना लिख्या है। तहां युक्ति करनेमें विवाद है। अर जिनमत स्याद्वाद है सो विवाद तौ जिनमतमें युक्त नाहीं। अर प्रतिमा दिगम्बर पूज्य है। ताके लेप चाहिये तौ नाहीं। अर कोई पूजक भक्त अपनी रुचितै चरननिके अर्पण भी करै, तो विवाद न करना, जलतै प्रक्षाल[1] होय तब उतर जाय है। अर लेप हीकी पक्ष करना दिगम्बरांके सेवकनिको उचित नाहीं।

१ दूसरी प्रतिमें प्रक्षाल लिखा है।

प्रश्न—सम्यग्दर्शन तत्वार्थश्रद्धानको कह्या अर तत्त्वार्थश्रद्धान आत्मज्ञानरहित होय तौ मोक्ष न होय ऐसे कह्या। सो तत्त्वार्थश्रद्धानमैं आत्मज्ञान आया कि नाहीं? जुदा ही आत्मज्ञान कहां रह्या?

उत्तर—जिनेन्द्रके आगममैं षट्द्रव्य, सप्ततत्त्व, नवपदार्थ, पंचास्तिकायका वर्णन है। तामैं आत्मज्ञान आय तौ गया परन्तु आगममैं ही आगमज्ञान अर अध्यातम ऐसे विशेषकरि भेदरूप कह्या है। तहां जो षट्द्रव्यादिकका आगममै स्वरूप कह्या, तिस मात्र ही जाणे अर अपने आत्मकी तरफ न देखै, तो तहां आगमका ज्ञान आत्मज्ञानकरि रहित भया। तब ऐसे जाननेवालेकै अपना हितका अनुभव तौ नाहीं, तब मोक्ष कैसे होय? यातै आत्मज्ञानकूं न्यारा नाहिं अध्यात्मशास्त्रजीमै चेत कराया है। अर जे आगममै गुरु आम्नायतै नीके समझे होंय, तिनकै तो तत्त्वार्थश्रद्धान कहनेहीमै आत्मज्ञान आय गया। जिनमतकी कथनी अनेकान्तस्वरूप है। सो स्यादवादकरि वचननिका विरोध मेटै है। तहां प्रमाणनय निक्षेप अनुयोगद्वारकरि स्याद्वादकूं नीके समझे मतमै विरोध न उपजे है। विना समझां पक्षपात करि कोई विरोध उपजै है, सो यह कालका दोष है।

प्रश्न—भगवानके कल्याणक महोत्सवमै इन्द्र आवै सो मूल शरीर न आवै विक्रियाही आवै। सो कारन कहा?

उत्तर—शास्त्रमै ऐसेही वर्णन है। मूल शरीर तिनके

विमानहीमै विचरै है। बाहर जाय, सो विक्रिया ही जाय है। यह आगमप्रमाण है।

प्रश्न—चक्रवर्ति नारायणकै हजारों स्त्री हैं, तिनका मूल शरीर तो पटरानीकै कह्या और स्त्रीनिकै विक्रिया जाना कह्या, सो उनकै कहा विक्रियक शरीर है?

उत्तर—तिनिकै देवनारकीकी ज्यों, वैक्रियक शरीर तौ नाहीं, परन्तु औदारिकमै भी वैक्रियककी ज्यों विक्रिया होना कहा है। ऐसे पटरानी प्रधान है, ताकै मूल शरीर है। उत्तर विक्रिया अन्यकै जाय। यह भी आगमप्रमाण है।

प्रश्न—चौथाकालमैं आदिमै आयु काय बड़ी थी, तब कहा पृथ्वी बड़ी थी कि यह ही थी। जो यह ही थी, तौ चक्रवर्तिकी सेनादिक कैसे समावै थी।

उत्तर—भरतक्षेत्रकी पृथिवीका क्षेत्र तौ बहुत बड़ा है। हिमवतकुलाचलतै लगाय जम्बूद्वीपकी कोट ताईं, बीचि कछू अधिक दशलाख कोश चौड़ा है। तामैं यह आर्यखंड भी बहुत बड़ा है। यामैं बीचि यह खाड़ी समुद्र है। ताकूं उपसमुद्र कहिये है। तहां आदिपुराणमै भरतचक्रवर्ति समस्तक्षेत्रमैं जहां जहांमैं दिग्विजय करी ताका वर्णन है, सो नीकै समझना। अर अबार आयु काय निपट छोटी है। ताका गमन भी थोरे ही क्षेत्रमै होय है। तातै अपने प्रश्न उपजै है। जो याका उत्तर कोई ग्रन्थमैं तौ हमने बांचा नाहीं, अर अपनी बुद्धितैं उत्तर देनेकी सामर्थ्य नाहीं, जैसे है तैसे प्रमाण है।

प्रश्न—तीर्थंकरकी वाणी गणधर झेलै, सो ही काल तिनके सामायिक करनेका। दोय कार्य एकै काल कैसे करै?

उत्तर—गणधर मुनिनकै सामायिक तौ सदाकाल ही है। जातै तृण कंचन शत्रु मित्र जीवन मरण सुखदुःखादिकमै रागद्वेष न करना सो ही सामायिक है। सो यह तौ सदाकाल ही है। अर तीनकाल सामायिक करना स्थापन किया है, सो तीर्थंकर तथा आचार्यादिक स्थापना, गुरु परोक्ष होय तिनकी स्तुति वंदनादिक करनी, तिनका भक्तिका पाठ पढ़ना, तथा संजममै दोष लाग्या होय, ताका प्रतिक्रमण करना। इत्यादि क्रिया कलापके अर्थ तीन काल नेम स्थापन किया है। अर तीर्थंकर साक्षात विद्यमान है, तिनकी भक्ति स्तुति वंदना तौ साक्षात होय ही रहै। अर तीनकी वाणी सुनना झेलना यह ही महान सामायिक है, यामै प्रश्न नाहीं।

प्रश्न—रामचन्द्रकृत चौवीसतीर्थंकरनिके पूजनके पाठमैं त्रिभंगी छन्दमैं मृगमदगोरोचनका नाम चन्दनके पाठमै लिख्या है, सो यह कैसें?

उत्तर—पूजनका पाठ चौवीस पूजाका इहां है। तामै देख्या सामान्यमै तथा विशेषमै मृगमद गोरोचनका नाम तो लिख्या नाहीं। अर अन्य कोई पाठ होइ, तामैं लिख्या होगा, तौ लौकिकमैं कस्तूरी गोरोचन सुगन्धद्रव्यमै प्रसिद्ध है। तिनकी सुगंधकी उपमा देनेको लिख्या होइगा। ए द्रव्य निपट अशुद्ध है। सो पूजनमै तौ इनका अधिकार नाहीं।

और लिख्या कि तोडरमलजीकृत मोक्षमार्गप्रकाश ग्रन्थ पूरण भया नाहीं, ताकों पूरण करना योग्य है। सो कोई एक मूल ग्रन्थकी भाषा होय, तौ हम पूरण करैं। उनकी बुद्धि वड़ी थी। यातैं विना मूल ग्रन्थके आश्रय उनने किया। हमारी एती बुद्धि नाही कैसे पूरन करै।

और लिख्यौ व्याकरण सारस्वतकी वचनिका करि भेजो तौ याकी बहुतकूं बोध होय। सो व्याकरणके पढ़ावनेवाले तौ काशीमै वहुत हैं। सारस्वतकी प्रक्रिया सिद्धान्तचन्द्रिका है। ताकूं पढ़कर समझना। यातै तुमकूं बोध हो जावगा।

और लिख्यौ जो तुमारे किये पदनिका पुस्तक भेजोगे, तथा और आचारादि ग्रन्थनिकी वचनिका करि भेजोगे। सो हमने एते ग्रन्थनिकी वचनिका करी है, श्लोक ५२०००। तत्त्वार्थसूत्र दशाध्यायीकी सर्वार्थसिद्धि आदिटीका है, ताके अनुसार श्लोक साढ़े ग्यारहहजार ११५००। समयसारजीके श्लोक ग्यारहहजार ११०००। ज्ञानार्णवके श्लोक दशहजार १००००। स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाके श्लोक चारिहजार ४०००। अष्टपाहुड़जीके श्लोक ६२००। परीक्षामुखन्यायग्रन्थके श्लोक चारिहजार ४०००। देवागमस्तोत्रके श्लोक दोहजार दोसै २२००। द्रव्यसंग्रहका श्लोक ग्यारहसौ ११००। सामायिकपाठका श्लोक ११००। पदके पुस्तक श्लोक ग्यारहसौ ११००। या भांति वचनिका बनाई है। सो तुमारे बांचनेकी रुचि होय, तौ तुमारा [illegible]

इहां होय ताकूं लिख देना। लेखनिपासि प्रति उतराय भैजेगो।

इन्द्रवज्रा ।

वाराणसीकुंजगलीनिषण्णो,वृन्दावनो वा हरिरेव क्रीडने
जैने सुधर्मे रुचिमादधाति यायाद्धि पत्रं सदिदं तदग्रे

शिखरिणी ।

यदा वाराणस्यामभवदवतारो जिनपते-
स्तदा धन्या साभूद्धनदरचिता नेक विभवा ।
अतो मान्या नित्यं सकलभुवनावासकजनै-
र्भवानास्ते तस्यां स्मरणमुचितं पार्श्वजिनतः ॥

४

जयपुरके दीवान अमरचन्दजीका पत्र ।

शार्दूलविक्रीडित ।

स्वस्तिश्रीत्रिजगद्धिताय गुरवे प्रोन्माथिने हृद्भुवो
यद्वाचा परमं पदं लघु ययुः सन्तो विशुद्धात्मगाः॥
तं चैवात्र निधाय चेतसि मया संलिख्यते पत्रिका ।
श्रीवृन्दावनमुख्यधार्मिकजनेभ्यःसन्ततं शर्मदा॥१॥

वसन्ततिलका ।

वाराणसीपुरनिवासिविशालदक्षाः
सद्धर्मपालनरताः पटवोऽभियुक्ताः ।

---

१ भावार्थ-श्री जिनेन्द्रदेवको हृदयमे स्थापित करके श्रीवृन्दावनादि धर्मात्माओंको चिट्ठी लिखता हू ।

२ काशीनिवासी धर्मपरायण, शास्त्रावलोकननिरत, और चतुर जैनी जन सदा सुखपूर्वक रहैं ।

शास्त्रावलोकनविचारचमत्कृतान्ताः
सत्त्वाः समन्तसुखिनः प्रभवन्तु जैनाः ॥ २ ॥

विश्वोपमागुणविराजितविग्रहेभ्यः[३]
सर्वज्ञभक्तिभरमोदितमानसेभ्यः ।
काशीश्वरादिसुजनेभ्य इतो ऽमरेन्दु-
मुख्यैर्जयाह्वनगराज्जिनसन्नतिः स्यात् ॥ ३ ॥

अत्रत्यमस्ति[४] कुशलं जिनपाङ्घ्रिभक्ते-
स्तत्रास्तु नित्यमतुलं तदनुस्मरामः ।
अन्यच्च पत्रमिह मोदभरेण सार्द्धं
यौस्माकमागतमतोऽजनि मुत्प्रकृष्टः ॥ ४ ॥

प्रश्नस्त्वलेखि[५] यदशक्तदिगम्बराय
कश्चिन्मुनिर्गदयुताय करेण कृत्वा ।
भक्तं ददाति विनयोत्तरबृंहणाय
तस्योत्तरं मनुत यूयमिति प्रमोदात् ॥ ५ ॥

---

३ सर्वोपमायोग्य, सर्वज्ञभक्तिसे प्रसन्न चित्त रहनेवाले, काशीनरेश आदि समस्त सज्जनोंको जयपुरसे अमरचन्दकी "जयजिनेंद्र" पहुंचै।

४ जिनेन्द्रदेवकी कृपासे यहा कुशल है, आपकी बहुत २ चाहते है। आपका हर्षप्रद पत्र आया, प्रसन्नता हुई।

५ आपने जो प्रश्न लिखा कि, किसी रोगयुक्त और अशक्त मुनिको कोई दूसरा मुनि विनयगुणके वढानेके लिये हाथसे भोजन बनाकर देवे, या नही? (देखो पृष्ठ ११९ प्रश्न १) इसका उत्तर इस प्रकार है,—

तद्यथा—मूलाचारे श्रीवट्टकेरस्वामिभिः प्रोक्तं व्याख्यानं च वसुनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तिभिः कृतम्—

गाथासूत्रम् ।

सेज्जोगासणिसेज्जा तहो उवहि पडिलिहणउवगहिदा ।
आहारोसहवायणविकिंचणं वंदणादीणं ॥

(तपआचाराधिकारे वैयावृत्तिप्रकरणे)

व्याख्या—शय्या, अवकाशो वसतिका, निषद्या आसनादिकं, उपधिः कुण्डकादिभिः कमण्डलुप्रभृतिभिः प्रतिलेखनं पिच्छादिभिरुपग्रहः उपकारः कर्तव्यः । आहारौषधवाचनविकिञ्चिनवन्दनादिभिः । आहारेण भिक्षाचारेण औषधेन शुण्ठीपिप्पल्यादिकेन, वाचनेन शास्त्रव्याख्यानेन, विकिञ्चनेन च्युतमलमूत्रादिनिर्हरणेन वन्दनया च पूर्वोक्तानां मुनीनामुपकारः कर्तव्यः ।

अत्र एवं ज्ञातव्यम् । आहारेण मुनीनामुपकारः कर्तव्यः । इति तु नो स्पष्टीकृतं यदाहारः स्वयं निष्पाद्य दातव्यः । मुनीनामीदृशीचर्या आचाराङ्गे नोक्ता यदुपरि लिखिता तदाचाराङ्गाविरोधेन विभावनीयमिति ।

---

१ श्रीमूलाचार ग्रन्थकी टीकामें श्रीवसुनन्दि सि० च० ने कहा है कि, " रोगादिक विपत्तिके समयमें शय्या, वसतिका, आसन, कमंडलु, पिच्छिका, आहार, औषध, शास्त्र-व्याख्यान, मलमूत्रादि साफ करना, और नमस्कारादिसे एक मुनिको दूसरे मुनियोंका उपकार करना चाहिये। सो इसमें आहार स्वय बनाकर देनेका स्पष्टीकरण नहीं किया है । आचार्य मुनियोंकी ऐसी क्रिया देखनेमें नहीं आई । इसलिये आचारांगका विरोध नहीं होने पावे, इस प्रकारसे अपने प्रश्नका समाधान कर लेना ।

उपेन्द्रवज्रा।

यँथा नभोद्रव्यमनन्तमीरितं
तथैव बोधः समुदीरितोऽमलः।
यतोऽखिलं ज्ञातमनेन तत्कथ-
मनन्तता तस्य तदुत्तरं स्मर॥

ज्ञानापेक्षया तु ज्ञातस्याप्यनन्तत्वं न संभवति। यतस्त-स्यात्मपरिज्ञाने परिज्ञातत्वानुपपत्तेः। किन्तु द्रव्यगणितावयव-

---

७ आकाशद्रव्य अनन्त है। इसी प्रकारसे ज्ञान भी अनन्त है। और ज्ञानमें सम्पूर्ण आकाश झलकता है। ऐसी अवस्थामें आकाश अनन्त कैसे हो सकता है? (देखो पृष्ठ ११९ पृष्ठ २) इसका उत्तर इस प्रकार है:—

८ ज्ञानकी अपेक्षा ज्ञात पदार्थ अनन्त नहीं हो सकता। यदि ज्ञात पदार्थ ज्ञानसे अनन्त माना जाय, तो वह ज्ञानके विषयभूत नहीं हो सकता। इसलिये ज्ञानकी अपेक्षा ज्ञात पदार्थ अनन्त नहीं है। किन्तु संख्याप्रमाणसे निखिल अनन्त पदार्थोंको यथायोग्य अनन्तता सिद्धि हो सकती है। वह इस प्रकार है कि;—सिद्धिराशि अनन्त है। उससे असंख्यातगुणी भूतकालकी समयराशि है। उससे अनन्तगुणी जीवराशि है। अथवा इस प्रकार समझना चाहिये कि, सिद्धोंसे अनन्तगुणी संसारी जीवराशि है। उससे अनन्तगुणी त्रिकालसमयवर्त्ती कालराशि है। उससे अनन्तगुणी सर्व आकाशप्रदेशोंकी राशि है। उससे अनन्तगुणी धर्माधर्म द्रव्यके अगुरुलघुगुणोंकी अविभागप्रतिच्छेदराशि है। उससे अनन्तगुणी सूक्ष्म-निगोदलब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य श्रुतज्ञानकी अविभागप्रतिच्छेदराशि है। उससे अनन्तगुणी दर्शनमोहके क्षयरूप जघन्य क्षायिकलब्धिकी अवि-भागप्रतिच्छेदराशि है और उससे भी अनन्तगुणी उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि-रूप केवलज्ञानकी अविभागप्रतिच्छेदराशि है। यह संख्याका सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। इससे आगे संख्याप्रमाण नहीं है। इस प्रकार सम्पूर्ण अनन्त पदार्थोंकी अनन्तता यथायोग्य समझ लेनी चाहिये।

सङ्ख्याप्रमाणादेव सर्वेषां यथायथमनन्ततासिद्धिरिति सुबोधमेतत्। तथाहि—प्रथमं सिद्धराशिरनन्तः ततोऽसंख्यगुणितो गतकालसमयराशिः। ततोऽनन्तगुणितो जीवराशिः। अथवा सिद्धेभ्योप्यनन्तगुणितः संसारिजीवराशिस्ततोप्यनन्तगुणः कालराशिः त्रैकालिकसमयप्रमाणरूप। ततोऽनन्तगुणः सर्वाकाशप्रदेशराशिः। ततो ऽप्यनन्तगुणो धर्माधर्मद्रव्यागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदराशिः। ततोऽप्यनन्तगुणः सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यश्रुतज्ञानाविभागप्रतिच्छेदराशिः। ततोऽप्यनन्तगुणः दर्शनमोहक्षयरूपजघन्यक्षायिकलब्ध्यविभागप्रतिच्छेदराशिः। ततोऽप्यनन्तगुणः उत्कृष्टः क्षायिकलब्धिरूपकेवलज्ञानाविभागप्रतिच्छेदराशिः। संख्याप्रमाणसर्वोत्कृष्टमेतत्। अत उत्तरं नास्ति। एवमनन्तता यथायोग्यं ज्ञातव्याः।

आर्या।

जीवा अनन्तसंख्याः संसारविमुक्तभेदतो द्विविधाः।
संसारान्निष्क्रान्ताः सततं सिद्धाः प्रजायन्ते॥

---

१ लोकमें अनन्त जीव हैं। उनके दो भेद है, एक ससारी और दूसरे मुक्त। जो संसारमें हैं, वे ससारी और जो संसारसे निकलकर सिद्ध हो जाते हैं, उन्हें मुक्त कहते हैं। संसारी जीव इस प्रकार निरन्तर सिद्ध होते जाते हैं। ऐसी अवस्थामें उनकी संख्या कम क्यों नहीं होती? इसका उत्तर सिद्धांतके अनुसार इस प्रकार है (इसके आगे उत्तर पत्रकी नकलमें बहुतसे अक्षर रह गये हैं। इस लिये उस पत्रका पूर्ण अनुवाद नहीं लिखा जा सकता। परन्तु उन खण्ड अक्षरोंका सक्षिप्त अभि-

एवमनन्तानेहसि तेषां हानिः कथं न जायेत।
हानिर्भवति परेषामिहोत्तरं शृणुत सिद्धान्तात्॥

भूतकालभवसिद्धानां भूतकालतः असंख्यातभक्तत्वेसि-द्धेभ्यः संसारिजीवानामनन्तगुणगणित ....नन्तगु-णत्वे भूतकालस्य चाक्षयानन्तत्वाद्भविष्यत्कालानन्तभागत्वात् .... संसारिजीवसिद्धेभ्योनन्तसामान्यसंख्याग्राहकपर्याया-र्थदेशात् हानिर्लभते। संदैवेहक् व्यपदेशं लभिष्यन्ति विशेष-संख्याग्राहकपर्यायार्थादेशात् हानिवृद्धी मन्ये॥ २॥

आर्या।

"यंदनेकान्तःकथयति हेतोर्दोषो हि तत्कथं सिद्धम्!"

प्राय ऐसा जान पडता है कि, अतीत कालमें जितने सिद्ध हो चुके हैं, वे अनन्त हैं और उनसे अनन्तगुणें संसारी जीव हैं। यद्यपि ऐसा है कि, संसारचक्रसे निकलकर जितने जीव सिद्ध होते जाते है, उतनी संख्या संसारी जीवोंकी सख्यामेंसे घटती जाती है, तथापि उनकी सामान्य अनन्तसंख्या कभी कम नही होती। जैसे कि आकाश अ-नन्त है। अब आप किसी एक जगहसे किसी तेज चलनेवाली सवारीपर सवार होकर किसी एक ही दिशाको नित्य गमन कीजिये। उस गम-नसे आप जितना चलेंगे, उस दिशाका उतना ही आकाश कम होता जायगा। परन्तु उसी दिशाके शेष आकाशमें अनन्तत्व सख्याका व्याघात कभी नहीं होगा। भावार्थ, यदि आपको इस प्रकार चलते २ अनन्त कल्प भी बीत जावेंगे, तो भी उस दिशाका शेष आकाश अनन्त ही र-हेगा। यदि कहींसे आकाशकी अनन्ततामें कमी पडेगी, तो आकाश अनन्त है, यह सिद्धान्त नही रहेगा। इसी प्रकार यद्यपि ससारमेंसे जीव घटते जाते हैं, तथापि उनकी सामान्यसख्या अनन्त ही रहती है।

१० नैयायिकादि लोग अनेकान्तको हेतुका दोष बतलाते हैं, सो किस

अयं हि प्रश्नः । अत्रोत्तरं यच्च प्रोक्तं हेतोरनैकान्तिकनामा दोषोस्ति स्वपरमतप्रसिद्धः । तत्कथमनेकान्तमेव जैना मन्यन्ते । तदित्थं ज्ञातव्यं । विपक्षेप्यविरुद्धवृत्तित्वं नामानैकान्तिकत्वं । यथाऽनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवत् इत्यत्र प्रमेयत्वादिति । तस्य हेतोराकाशे विपक्षभूते नित्येपि निश्चयात् अनैकान्तिकत्वनामा दोषः साध्यागमकत्वात् । यश्चानेकान्तः स्याद्वादः, तस्य तु अनेके अन्ता धर्मो नित्याऽनित्यभावाभावे-

---

प्रकार है? अर्थात् जिसको अन्यमतीय हेतुका दोष कहते हैं, उस अनेकान्तको जैनी लोग अपना सिद्धान्त कैसे मानते हैं? (पृष्ठ १२० प्रश्न ५)

११ इसका उत्तर यह है कि, जो हेतुसाध्यके विपक्षमे भी रहे, ऐसे अनैकान्तिक कहते है । जैसे किसीने कहा कि, शब्द अनित्य है क्योंकि प्रेमय है। जो प्रमेय होता है, सो अनित्य होता है जैसे कि, घट। इस वाक्यमें शब्दकी अनित्यताको सिद्ध करनेवाला प्रमेय हेतु है। परन्तु वह अनित्यताके विपक्षभूत आकाशादिक नित्य पदार्थोंमे भी रहता है। क्योंकि वे भी प्रमेय हैं। इस प्रकार प्रमेयत्व हेतु शब्दकी अनित्यताको सिद्ध नहीं करसकता। इसलिये वह हेतु नहीं, किन्तु सदोष हेतु अथवा हेत्वाभास है। इसीको अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं । किन्तु स्याद्वाद अनेकान्त ऐसा नहीं है । जिसमें प्रतिनियत सुनयगोचर प्रतिनियत हेतुओंकी विशेष विशेष विविक्षासे अनेक नित्य अनित्य, भाव अभाव, एक, अनेक, द्वैत, अद्वैत आदिक अन्त अर्थात् धर्म हों, उसे अनेकान्त कहते हैं। इस प्रकार पृथक्२व्युत्पत्ति करनेसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि, जो अनैकान्तिक हेतुका दोष है, उसका अर्थ भिन्न है, और जो स्याद्वादरूप अनेकान्त है, उसका अर्थ भिन्न है। और उसमें प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणसे कोई दोष नहीं आता। इसका विशेष विस्तार प्रमेयकमलमार्तण्ड अष्टसहस्री आदि ग्रन्थोंमें किया गया है।

कानेकद्वैताद्वैतरूपाः प्रतिनियतसुनयगोचराः प्रतिनियत हेत्वर्प्पणविशिष्टविवक्षावशतो यत्र सोयमनेकान्तः । इति व्युत्पत्तेस्ततो विस्पष्टभेदगतेरदृष्टेष्टविरोधकत्वात् विशदतरः । प्रपञ्चितमेतत् प्रमेयकमलमार्तण्डाष्टसहस्र्यादिषु ।

आर्या ।

"विधिभावनानियोगा[12] वेदार्थास्ते कथं स्फुटं वाच्याः॥"

वेदार्थस्य[13] त्रयो व्याख्यातारः । भट्ट प्रभाकर वेदान्तिनः ।

---

१२ वेदके जो विधि भावना और वेदान्ती ये तीन अर्थ किये हैं, वे किस प्रकार सिद्ध होते हैं? (पृष्ठ १२० प्रश्न ६)

१३ भट्ट प्रभाकर और वेदान्ती ये तीन वेदका व्याख्यान करनेवाले हुए हैं। उनमें भट्टमतानुयायी मीमासक भावनावाक्यार्थवादी है। प्रभाकर मतानुयायी नियोगवाक्यार्थवादी है। और वेदान्ती विधिवाक्यार्थवादी है। निरवशेष योगको नियोग कहते हैं। उसमें किंचित् भी अयोगकी संभावना नहीं। यही उसका सामान्यरूप है। प्रेरणा चोदना ये भी उसके नामान्तर हैं। और वह पृथक् मतभेदसे ग्यारह प्रकारका है। भावनाके शब्दभावना और अर्थभावना ऐसे दो भेद हैं। लिखा है कि " तिङ् आदिक कहते हैं अर्थात् उनसे जाना जाता है कि शब्दात्मक भावना अन्य है और यह सर्वार्थ भावना अर्थात् निखिल अर्थोंको कहनेवाली भावना पृथक् है। जो कि समस्त तिङन्तोंमें रहती है। यही विषय अष्टसहस्रीकी टिप्पणीमें इस प्रकार लिखा है कि, किसी कार्यके करनेमें कर्ताको जो प्रयोजक क्रिया है, उसको भाववादी लोग भावना कहते हैं । सत्तामात्र पुरुषाद्वैतवादको विधि कहते हैं । क्योंकि " यही आत्मा देखने योग्य है, सुनने योग्य है और ध्यान करने योग्य है" इस वेदवाक्यसे सिद्ध होता है। तथा वेदान्तवादी ऐसा भी कहते हैं कि " मैं विलक्षण अवस्था विशेषसे प्रेरणा किया गया हूं" इससे स्वय आत्मा ही प्रतिभासत होता है। बस यही विधि है। उक्त प्रकारसे इन तीनोंका संक्षेप कथन

तेषु भट्टमतानुसारिणो मीमांसकाः भावना वाक्यार्थवादिनः। प्रभाकरमतानुसारिणो नियोगवाक्यार्थवादिनः। वेदांतानुसारिणो विधिवाक्यार्थवादिनः। तत्र नियोगस्य सामान्यरूपं नियुक्तोहमनेनाग्निष्टोमादिवाक्येनेति। निरवशेषो योगो हि नियोगः। तत्र मनागप्ययोगस्य संभवाभावात्। प्रेरणा चोदना इत्यपि नामान्तरं स चैकादशधा प्रव्यक्तमतभेदात्। भावना द्विप्रकारा। शब्दभावना अर्थभावना च। "शब्दात्मभावनामाहुरन्यामेव तिङादयः। इयं त्वन्यैव सर्वार्था सर्वाख्यातेषु विद्यते"। इति वचनात्। यथा अष्टसहस्रीटिप्पणकाराः "तेन भूतिषु कर्तृत्वं प्रतिपन्नस्य वस्तुनः। प्रयोजकक्रियामाहुर्भावनां भाववादिनः"। विधिसत्तामात्रः पुरुषा-

---

किया गया है। इसका विशेष व्याख्यान अष्टसहस्री ग्रन्थमें लिखा है जोकि उसके खण्डनमें है। और वह इस प्रकार है कि "भट्टमतानुयायी वाक्यका अर्थ भावना ही मानता है और प्रभाकर नियोग ही मानता है। ऐसी अवस्थामें वाक्यका अर्थ भावना ही है, नियोग नही है, अथवा नियोग ही है, भावना नहीं है, इसमें क्या प्रमाण है? यदि दोनो अर्थ माने जावेंगे, तो भट्ट और प्रभाकर दोनों ही मारे जावेंगे। भावार्थ दोनो मतोंका खण्डन हो जायगा। इसलिये उपर्युक्त दोनों अर्थ मानना युक्तिसगत नहीं है। अथवा चोदना ज्ञान अर्थात् नियोग कार्यार्थमें ही है, ऐसा भट्ट मानता है। परन्तु वह कार्यार्थमें है, स्वरूपमें नहीं है, इसमें क्या प्रमाण है? यदि दोनोमे माना जावे, तो भट्ट और वेदान्ती दोनोको भागना पडेगा। भावार्थ इन दोनोका मत भी विचार शून्य है, ऐसा निरूपण किया है तथा आगे चालीस पत्रोंमे इसका विशेष व्याख्यान किया है। जो विस्तारभयसे नही लिखा जा सकता।

द्वैतवादः । "द्रष्टव्योरेयमात्मा श्रोतव्योऽनुमन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इत्यादि शब्दश्रवणात् । अवस्थान्तरविलक्षणेन प्रेरितोहमिति जाताकूतेनाकरेण स्वयमात्मैव प्रतिभाति स एव विधिरिति वेदान्तवादिभिरविधानात् इति संक्षेपः । तेषां विशेषस्वरूपव्याख्यानमष्टसहस्र्यां प्रपञ्चितं । तद्यथा । "भावना यदि वाक्यार्थो नियोगो नेति का प्रमा । तावुभौ यदि वाक्यार्थौ हतौ भट्टप्रभाकरौ ॥ १ ॥ कार्येर्थे चोदना ज्ञानं स्वरूपे किं न तत्प्रमा । द्वयोश्चेद्धन्त तौ नष्टौ भट्ट-वेदान्तवादिनौ" ॥ २ ॥ इति प्ररूप्य तदनन्तरं चत्वारिंशत्पत्रेषु तत्प्रकरणस्य विशेषव्याख्यानं कृतं वर्तते । तत्पत्राणि लिखितुं न शक्यानीति ज्ञातव्यं भवद्भिः प्रेक्षावद्भिः ।

यच्च लिखितं—

नय नय लहय सार शुभवार ।
पय पय दहय भार दुखकार ।
लय लय गहय पार भवधार ।
जय जय समयसार अविकार ॥

इत्यस्यार्थनिर्णयाय तदित्थं ज्ञातव्यं । समयसारके मंगलाचरणविषै समयसारजीकी महिमाका वर्णन है । जो विकाररहित श्री समयसारनामा ग्रंथ जयवंतो प्रवर्तो । कैसो है समयसार, जाके व्याख्यानविषै, नय नयके साररूप आप्त करि कल्याणके द्वारकी प्राप्ति होय है ।

फिरंग्याके प्रश्नांको जवाब जैनंदजीका लिख्याको न्योग

मँगायो सो दिल्लीमै लाला सगुनचंदजीके मंदिर नकल हो सी। इहांसो ठीक करायो, सो मौजूद नहीं। और लिखी जो श्रीकुंदकुंदाचार्य सीमंधरस्वामीके निकट जाय, वहांतै गाथा-ल्याये, सो लिखियौ, सो वांका वणाया ग्रंथ समयसारादिक प्रसिद्ध ही छै, और न्यारी गाथा जाणिबामें आई नही छै। और श्रीपद्मपुराणजी शुद्ध कराय भेजवा वास्ते लिखी, सो शुद्ध करायज्ये छै। शुद्ध होय चुक्या पाछे भेजिवामें आसी। और श्रीपंचपरमेष्ठीजीका पूजनविषै आचार्योंकी स्थापनाको काव्य है, ताका अर्थवास्ते लिखी, सो इसतरह समुझज्यौ।

स्रग्धरा।

क्षिप्तापक्षाक्षपक्षाः क्षततत्कुमताः कान्तिसंतक्षितक्ष्मा दक्षैणाक्षीकटाक्षक्षयकरकुशला लक्षितालक्ष्यलक्ष्याः॥ अध्यक्षेक्षेक्षितालंक्षतदुरुपधयो मोक्षलक्ष्म्यक्षराक्षाः क्षिप्रं क्षिण्वंतु साक्षात् क्षितिमिह गणपाः क्षुत्क्षितक्षेमवृक्षाः॥ १॥

अस्यार्थः—इह पूजनावसरे गणपाः आचार्याः साक्षात् क्षितिं स्थापनाभूमिं क्षिप्रं क्षिण्वन्तु प्रकाशयन्तु। कीदृशाः गणपा क्षिप्तापक्षाक्षपक्षाः क्षिप्तास्तिरस्कृतः अपक्षः शत्रुरूपः अक्षपक्ष इन्द्रियसमुदायो यैस्ते। पुनः कीदृशाः। क्षतततकुमताः क्षतानि ध्वस्तानि अनेकान्तवादेन जितानि ततानि विस्तृतानि कुमतानि मिथ्यावादिप्रणीतशास्त्राणि यैस्ते। पुनः कीदृशाः कान्तिसन्तक्षितक्ष्माः। ....

………………… पुनः कीदृशाः दक्षैणाक्षीकटाक्षक्षयकरकुशलाः दक्षा चासौ एणाक्षी च तस्याः कटाक्षानां क्षयं कुर्वन्ति अत एव कुशलाः प्रवीणाः जितमदनबाणाः ……… प्रावीण्योत्कर्षवत्वसंभवात् । पुनः कीदृशाः लक्षितालक्ष्यलक्ष्याः । लक्षितः साक्षादनुभूतः अलक्ष्यो निरंजनः शुद्धचिद्रूपलक्षणो लक्ष्यो ध्येयपदार्थः आत्मा यैस्ते । पुनः कीदृशाः अध्यक्षेक्षेक्षितालंक्षतदुरुपधयः । अध्यक्षरूपाः स्वसंवेदनप्रत्यक्षात्मानुभवनरूपा ईक्षा दृष्टिस्तया ईक्षते यः सोध्यक्षेक्षेक्षी तस्य भावस्तया अलम् अत्यर्थं क्षता दूरीकृता दुःखोत्पादका निन्द्या उपधयः परिग्रहा यैस्ते । पुनः कीदृशाः मोक्षलक्ष्म्यक्षराक्षाः । मोक्षलक्ष्म्या भाविन्या अक्षरः अविनश्वरः अक्ष आत्मा येषां ते । पुनः कीदृशाः क्षुत्क्षितक्षेमवृक्षाः क्षुधा कृत्वा क्षिताः क्षीणदेहयष्टयोपि क्षेमवृक्षाः कल्याणतरवः । क्षुधाया उपलक्षणत्वात् सर्वे परीषहा ग्राह्याः । अत्र हीनाधिकं यद्भवेत् तद्बहुश्रुतैश्शोध्यम् ।

अन्यच्च—विश्वेश्वरभ्रातृहस्ते पुस्तकान्यतः प्रेषितानि । तेषां प्राप्तेः भवतामानन्दोत्कर्षोऽजनि, तद्योग्यमेव । अवशिष्टपुस्तकानि यथानिष्टं प्रेष्यानि भविष्यन्ति । भ्रातृधर्मचन्द्रकनाम्ना-

---

१४ विश्वेश्वर भाईके हाथ पुस्तकें भेजीं। उनकी प्राप्तिसे आपको जो आनन्द हुआ, सो योग्यही है। शेष पुस्तकें सुभीतेसे भेजी जावेंगी। यहांके भाइयोंको भाई धर्मचन्द्रजीका जयजिनेन्द्र कह दिया। उनसे धर्मचन्द्रजीसे कह देना। भाई रूपचन्दजी [illegible] जयजिनेन्द्र कह दी गई। इनकी ओरसे और सब भाइयोंको कह दीजिये।

त्रस्थभ्रातृभ्यो जयजिनेन्द्रशब्दो निवेदितः तेषां परमप्रमोदभ-रपूर्वकं निवेदनीयम् ।

अन्यच्च—भ्रातृऋषभदासजीघासीरामजीकाभ्यां जय-जिनेन्द्रशब्दो निवेदितः । एतयोः सर्वेभ्यो निवेदनीयः ।

[15]अन्यच्च—मन्नालालोदयचन्द्र-माणिक्यचन्द्र-तनुसुखप्रभृति भ्रातृकृता सर्वभ्रातृभ्य. परमप्रमोदभरपूरितानन्दामृतपूरितशुद्ध-चैतन्यानुभवपरसंजन्यमुक्तिमार्गसार्थत्वपवित्रपात्रीभूतत्वसमेत-प्रीतिरीतिविस्फूर्तिभृताश्रीजयजिनेन्द्रशब्दसन्ततिरुल्लसतितराम्।

अपरं च—

द्रुतविलम्बितम् ।

[16]करणवर्गसुतृप्तिविधायिनः
सुभगयौवनभूषितविग्रहाः ।
परविभूतियुताः सदुपायिनः
कति कति प्रथिता न नराधिपाः ॥

आर्या ।

[17]असकृद्भुक्तं राज्यं युवतिशतान्यपि तथैव भुक्तानि ।

१५ मन्नालाल, उदयचन्द्र, माणिक्यचन्द्र, तनसुख आदि भाइयोंकी सबसे जुहार कहिये ।

१६ इन्द्रियोंको सतृप्त करनेवाले, सुन्दरयौवनभूषित शरीरवाले, उत्कृष्ट विभूतिके धारण करनेवाले, और बडी २ भेंटोंके ग्रहण करनेवाले कितने २ राजा ससारमें प्रसिद्ध नहीं हुए ।

१७ अनेकवार राज्यभोग किया, अनेकवार सैकडों स्त्रियोंका भोग किया, और श्रेष्ठ सम्पत्तिका भी खूब भोग किया । परन्तु खेद है कि, विशुद्ध निजानन्दस्वरूप आत्माका स्मरण कभी नहीं किया ।

वरसम्पदोपि चात्मा न खलु विशुद्धः स्मृतो निजानन्दः॥
येर्न[18] स्मृतेन झटिति प्रकटविनष्टा भवन्ति रागाद्याः।
प्रभवति मुक्तिरधीना चैतन्यामृतपयोधिमग्नानाम्॥
तेंभ्रातर[19] इह लोके समुपगतनृजन्मसारमणिराशौ।
भवितव्यं न दरिद्रैः प्रच्युतसारैः प्रमादवशगत्वात्॥

द्रुतविलम्बितम्।

चिरंपरिभ्रमणोद्भवदुःखतो
न खलु कश्चिदिहास्ति निवारकः।
सुगुरुदत्तपरात्मविवेकजा-
दपर इष्टकृदच्छविबोधतः॥
अयि विवेकपयोधिकलाधर
परमतत्त्वसमर्प्पणतत्पर।
निजरसामृतपानसमुत्सुक
समयसार ······ शतधीधुन॥

अन्यच्च[21]—असाकमनिन्द्यहृद्यगद्यपद्यामन्दविनोदविशारद-

---

१८ जिसके कि स्मरणसे चैतन्यामृत समुद्रमें मग्न रहनेवाले पुरुषोंके रागादिक शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, और मुक्तिलक्ष्मी उनके अधीन हो जाती है।

१९ इसलिये हे भाई! प्रमादके वशीभूत होकर मनुष्यजन्मरूपी सारभूत मणियोंकी राशिवाले संसारमें सार भागको छोड़कर दरिद्री नहीं बने रहना चाहिये।

२० इस संसारमें सुगुरुदत्त निर्मलज्ञानके बिना चिरकाल परिभ्रमण-जन्य दुःखका निवारण करनेवाला अन्य कोई नहीं है।

२१ इस जगमें एक अर्हंतदेवको [illegible]

विद्वद्वरपरिषत्सुन्दरीसत्सौन्दर्य्याभिभाविनां भविकानुभाविनां सुदर्शनज्योत्स्नादिमज्जनं कदाभावि सपदीति ध्यायामः। प्रीतिस्फीतिमतीरितिव्यावृतिमतामनन्योपमेयाप्रमेयधैर्य्यधौरेयध्येयामेयनाभेयप्रमुखसच्चरणार्णोनपरिचर्योपनिष्ठानां जिनर्षभप्रवचनवचनासाधारणाभ्यसनव्यसनचणचारुतोपपन्नसमञ्जसप्रतिभाप्रकर्षविपर्यासितानध्यवसितधिषणावदवद्यव्यवसायव्यासनाश निरुपायप्रयासानां भवतां ज्ञानवतां शौर्यौदार्य्यधैर्य्यगाम्भीर्य्यमाधुर्य्यपौरुषगुणगणभृतामालोकान्तरासादनं भवत्संयुक्तिविप्रयुक्तिप्रयुक्तिमुक्तिश्रोतस्थानमाप्नोत्वित्यपि च। किं चानुदिनवरीवृद्ध्यमानप्रधानगुणसन्तानविराजमानारुमानं जजिजान (?) गणनीयप्रणयिजनगणमनःप्रीणनप्रवणा युष्मादृशाः समदृशः सदा रसातले नहि सुलभतराः सुरतरव इव। तद्दिनं सुदिनं कलयामो यत्राविरलानाविललापनविलोकनकान्तिजलविलोलकल्लोलाकुलितललितमुनिलंपत्कादिनिप्लवनादाप्लावितकलेवराणामस्माकं कलेवरिणां लपनाद्भवद्गुणप्रख्यानव्याख्यानं भवेत्। परं च परमप्रेमनिर्भरभरामत्रीभूतां मुदशंविधायिप्रानन्दविविधवृत्तवाहित्रं पत्रमन्वहं संचार्य प्रेष्याप्रेष्यविवेकैर्भवत्वधिकवाग्विडंवरैर्विधिविधावित्सुः इति।

कार्तिककृष्णा २ संवत् १८८४।

गया है। इसका यथार्थ आनन्द जो महाशय संस्कृत जानते हैं, उन्हींको आ सकता है"।

(१७)

शीलमाहात्म्य ।

जिनराज देव कीजिये मुझ दीनपर करुना ।
भविवृन्दको अब दीजिये, इस शीलका शरना ॥टेक॥

शीलकी धारामें जो, स्नान करै है ।
मलकर्मको सो धोयके, शिवनार वरै है ॥
व्रतराजसों वेताल, व्याल काल डरै है ।
उपसर्गवर्ग घोरकोट कष्ट टरै है ॥ १ ॥

तप दान ध्यान जाप जपन, जोग अचारा ।
इस शीलसे सब धर्मके, मुंहका है उजारा ॥
शिवपंथ ग्रंथ मंथके निर्ग्रन्थ निकारा ।
विन शील कौन कर सकै संसारसे पारा ॥ २ ॥

इस शीलसे निर्वान नगरकी है अवादी ।
त्रेषठशलाका कौन, ये ही शील सवादी ॥
सब पूज्यके पदवीमें है परधान ये गादी ।
अठरासहस्र भेद भने वेद अवादी ॥ ३ ॥

इस शीलसे सीताको हुआ आगसे पानी ।
पुरद्वार खुला चलनिमें भर कूपसो पानी ॥
नृप ताप टरा शीलसे रानी दिया पानी ।
गंगामें ग्राहसों वची इस शीलसे रानी ॥ ४ ॥

इस शीलहीसे सांप सुमनमाल हुआ है ।
दुख अंजनाका शीलसे उद्धार हुआ है ॥

यह सिन्धुमें श्रीपालको आधार हुआ है।
वम्पाका परम शीलहीसे पार हुआ है ॥ ५ ॥
द्रोपदिका हुआ शीलसे अम्बरका अमारा ।
जा धातुदीप कृष्णने सब कष्ट निवारा ॥
सब चन्दना सतीकी, व्यथा शीलने टारा ।
इस शीलसे ही शक्ति विशल्याने निकारा ॥ ६ ॥
वह कोट शिला शीलसे लक्ष्मणने उठाई ।
इस शीलसेही नाग नथा कृष्ण कन्हाई ॥
इस शीलने श्रीपालजीकी कोढ़ मिटाई ।
अरु रैनमंजूषाका लिया शील बचाई ॥ ७ ॥
इस शीलसे रनपाल कुंअरकी कटी बेरी ।
इस शीलसे विष सेठके नन्दनकी निवेरी ॥
शूलीसे सिहपीठ हुआ सिहहीसेरी ।
इस शीलसे कर माल सुमनमाल गलेरी ॥ ८ ॥
सामन्तभद्रजीने अहो, शील सम्हारा ।
शिवपिंडतै जिनचन्दका प्रतिविम्ब निकारा ॥
मुनि मानतुंगजीने यही शील सुधारा ।
तब आनके चक्रेश्वरी सब बात सम्हारा ॥ ९ ॥
अकलंकदेवजीने इसी शीलसे भाई ।
ताराका हरा मान विजय बौद्धसे पाई ॥
गुरु कुन्दकुन्दजीने इसी शीलसे जाई ।
गिरनारपै पाषाणकी देवीको बुलाई ॥ १० ॥

इत्यादि इसी शीलकी महिमा है घनेरी।
विस्तारके कहनेमें बड़ी होयगी देरी॥
पल एकमें सब कष्टको यह नष्ट करेरी।
इसहीसे मिलै रिद्धि सिद्धि वृद्धि सवेरी॥ ११॥

विन शील खता खाते हैं सब कांछके ढीले।
इस शील विना तंत्र मंत्र जंत्र ही कीले॥
सब देव करें सेव इसी शीलके हीले।
इस शीलहीसे चाहे तो निर्वानपदी ले॥ १२॥

सम्यक्त्वसहित शीलको, पालें हैं जो अन्दर।
सो शील धर्म होय है, कल्याणका मन्दिर॥
इससे हुए भवपार हैं कुल कौल औ वन्दर।
इस शीलकी महिमा न सकै भाष पुरन्दर॥ १३॥

जिस शीलके कहनेमें थका सहसवदन है।
जिस शीलसे भय पाय भगा क्रूर मदन है॥
सो शील ही भविवृन्दको कल्याणप्रदन है।
दशपैंड़ ही इस पैंड़से निर्वानसदन है॥ १४॥

जिनराजदेव कीजिये मुझ दीनपै करुना।
भविवृन्दको अब दीजिये इस शीलका शरना॥

इति शीलमाहात्म्य।

———